Reg. No. B. 115.

ॐ

जैनहितैषी।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी
लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी, हीराबाग, बम्बई नं. ४।

दशवाँ भाग। | आषाढ़ श्रीवीर नि० संवत् २४४० | ९ वाँ अंक।

विषयसूची। पृष्ठ

१ जैन-स्तूप ५११
२ सांख्यदर्शन ५२१
३ पुस्तक परिचय ५३१
४ आदर्श आर्या ५४०
५ गुण सीखो, अवगुण नहीं ५४९
६ मीठी मीठी चुटकियाँ ५५२
७ ग्रन्थ परीक्षा (जिनसेन-त्रिवर्णचार) ५५५

केसर—काश्मीरकी केशर जगत्प्रसिद्ध है। नई दर १) तोला।

सूतकी मालायें—सूतकी माला जाप देनेके लिए सबसे अच्छी समझी जाती हैं। दर एक रुपयेमें दश माला।

दीपमालिका उत्सवके कार्ड और नोटपेपर शीघ्र मंगाइये। दर चार आना सैकड़ा।

पत्रव्यवहार करनेका पता—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Printed by Ganpat Narayan Kulkarni at his Karnatak Press,

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

जैनियोंकी इच्छा पूर्ण ! अपूर्व आविष्कार !! न भूतो न भविष्यति !!!

जैनार्णव

अर्थात्

१) रुपयामें १०० जैन पुस्तकें।

हमारी बहुत दिनोंसे यह इच्छा थी कि एक ऐसा पुस्तकोंका संग्रह छपाया जाय जो कि यात्रा व परदेशमें एक ही पुस्तक पास रखनेसे सब मतलब निकल जाया करे। आज हम अपने भाइयोंको खुशीके साथ सुनाते हैं कि उक्त पुस्तक "जैनार्णव" छपकर तैयार हो गया। हमने सर्व भाइयोंके लाभार्थ इसमें १०० पुस्तकोंको इकट्ठा कर छपाया है। तिसपर भी मूल्य सिर्फ १) रु० रक्खा है। ये सब पुस्तकें यदि फुटकर खरीदी जावें तो करीब ३) रु० के होंगी। परदेशमें यही एक पुस्तक पास रखना काफी होगा। ये देशी सफेद चिकने पुष्ट कागज पर सुन्दर टाईपमें छपी है। और सबको मिलाकर ऊपरसे मजबूत और सुन्दर टैटिल चढ़ाया है। जल्दी कीजिये क्योंकि हमारे पास अब सिर्फ आधी ही पुस्तकें बाकी रह गई हैं, नहीं तो बिक जानेपर पछताओगे। कीमत फी पुस्तक १) रुपया। डांक खर्च =) दो आना।

मंगानेका पता:—चन्दसेन जैन वैद्य—इटावा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१०वाँ भाग] आषाढ़, श्री वी०नि०सं० २४४० । [९ वाँ अं०

जैन-स्तूप ।

भारतीय इतिहासके सम्बन्धमें ज्यों ज्यों अन्वेषण होते जाते हैं त्यों त्यों नई नई बातें हाथ लगती जाती हैं। भारतके भूगर्भमें बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री छुपी हुई है। हमारी सरकारने अनेक प्राचीन स्थानोंको खुदवाया है और उनमें बहुतसे महत्त्वपूर्ण लेख और इमारतें मिली हैं। सर्व साधारणका अब तक यही विश्वास था कि स्तूप केवल बौद्धोंने ही बनाये थे। परन्तु कई वर्ष हुए मथुराके 'कंकाली' टीलेके खोदे जाने पर इस विचारमें परिवर्तन करना पड़ा। इस अन्वेषणसे यह बात प्रकट हो गई कि जैनियोंने भी स्तूप बनाये थे। यद्यपि बौद्धोंके समान जैनियोंका एक भी स्तूप अब भारत-भूमि पर विद्यमान नहीं है, तथापि अब तक जैनियोंके प्राचीन स्तूपोंके कई दृढ प्रमाण मिल चुके हैं। जैनियोंके स्तूप बौद्धोंके स्तूपोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते थे।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि मथुरा कितना प्राचीन महत्त्वका क्षेत्र है। महाराज श्रीकृष्णके समयकी बात तो दूर है केवल १५०० वर्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए मथुराकी महत्ता कुछ कम न थी। फाहियान नामक चीनी प्रवासीने ई० सन् ४०० के लगभग भारतकी यात्रा की थी। उसे मथुरामें यमुनाके दोनों किनारों पर बौद्धोंके २० मठ मिले थे। प्रत्येक मठमें स्तूप, मंदिर इत्यादि बने हुए थे और इन मठोंमें सब मिलकर ३ हज़ार बौद्ध श्रमण रहते थे। इसके पश्चात् हुएनसांगको भी जो यहाँ सातवीं शताब्दिके आदिमें आया था इतने ही बौद्ध मठ मिले; परन्तु उसके अनुमानसे उनमें बौद्ध श्रमण सिर्फ २ हज़ार थे। हुएनसांगने ब्राह्मणोंके भी कई मंदिरोंका उल्लेख किया है। अतः इस बातमें अब कोई संदेह नहीं रहा है कि मथुरामें एक समय वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों मत प्रचलित थे। परन्तु अब वे मठ, स्तूप और मंदिर जिनका चीनी प्रवासियोंने उल्लेख किया है कहाँ हैं? वे सब कालके गालमें चले गये।

मथुरामें कई स्थान खोदे गये हैं। गोवर्धन दरवाजेसे एक मील पर एक टीला है, जिसको 'कंकाली टीला' बोलते हैं। इस टीले पर 'कंकाली देवी'का मंदिर है।मंदिर क्या है एक छोटीसी झोपड़ीमें एक स्तंभका टुकड़ा रक्खा है। इस देवीके नाम परसे ही इस टीलेका नाम पड़ गया है। यह टीला कई बार खोदा जा चुका है। पहले यहाँ सन् १८७१ में खुदाईका काम हुआ था। डाक्टर फुहररको सन् १८८८–९१ ई०में इस टीलेमें अनेक महत्त्वपूर्ण पदार्थ मिले। इस टीले पर खुदाईके चिह्न अब बिल्कुल नहीं मालूम होते। जहाँ तहाँ वृक्ष खड़े हैं और ऐसा मालूम होता है कि यह टीला पहले कभी खुदा ही नहीं था। जब मैंने इस स्थानको पहले पहल देखा, तब मुझे भी बड़ी मुशकिलसे विश्वास हुआ कि यह 'कंकाली टीला' है। समय समय पर इस टीलेमेंसे जैनियोंकी अगणित चीजें निकली हैं। इसमें अब कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संदेह नहीं रहा कि यह स्थान प्राचीनकालमें जैनियोंका 'अतिशय क्षेत्र' था। डाक्टर फुहररको यहाँ पर एक बौद्ध-विहार और एक वैष्णवमंदिरके अंश भी मिले। इसी टीलेमें एक जैन स्तूप मिला। स्तूपके एक ओर एक विशाल मंदिर दिगम्बर सम्प्रदायका और दूसरी ओर एक विशाल मंदिर श्वेताम्बर सम्प्रदायका मिला। खोदनेमें ये सब छिन्न भिन्न हो गये। यदि इस काममें असावधानी न होती तो इससे अधिक सफलता प्राप्त होती। खोदनेके समय कई फोटो लिये गये थे। वे अवश्य ही अब तक मौजूद हैं।

जैन स्तूपोंके सम्बन्धमें जितने अनुसन्धान हुए हैं, उनमेंसे अधिकांश विन्सेंट ए. स्मिथ साहबने एक पुस्तकमें संग्रह किये हैं। उसीकी सहायतासे यहाँ पर कुछ लिखा जाता है। परन्तु इससे पहले अच्छा होगा कि स्तूपोंकी बनावटका संक्षेपमें वर्णन कर दिया जाय। स्तूपका पेंदा गोल होता है अर्थात् वह नीचेसे वृत्ताकार होता है। स्तूपमें तीन भाग होते हैं। नीचे एक ऊँचा गोल चबूतरा उसके ऊपर ढोल या कुएके आकारकी इमारत और उसके भी ऊपर एक अर्धगोलाकार गुम्बज (छतरी) होता है। चबूतरे पर स्तूपके चारों ओर एक प्रदक्षिणापथ छोड़ कर पत्थरकी लम्बी खड़ी और आड़ी पटरियोंका एक घेरा (Railing) बना रहता है। इस घेरेमें अधिकतर चारों दिशाओंमें एक तोरण (Gateway) बना होता है। यह तोरण बड़ा ही सुन्दर बनाया जाता है। पत्थरके दो स्तंभ खड़े करके उनके ऊपरके सिरों पर तीन आड़ी पटरियाँ लगा देते हैं। उन्हींके नीचेसे आनेजानेका रास्ता रहता है। तोरण तक जानेके लिए सीढ़ियाँ रहती हैं। ये स्तूप पोले और ठोस दोनों तरहके मिले हैं। जिन्होंने बौद्धोंके स्तूप देखे हैं वे इन बातोंको अच्छी तरह समझ सकेंगे। जैनियोंके भी ऐसे ही स्तूप थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मथुराका जैन स्तूप।

विस्तार और बनावट—इस स्तूपके तलेका व्यास ४७ फीट था। यह ईंटोंका बना हुआ था; ईंटें आपसमें बराबर न थीं किन्तु छोटी बड़ी थीं। इसका भूमिका ढाँचा (ground plan) इक्के या गाड़ीके आकारका था। केंद्रसे बाहरकी दीवार तक आठ व्यासार्ध थे जिन पर आठ दीवारें स्तूपके भीतर ही भीतर ऊपर तक बनी हुई थीं। इन दीवारोंके बीचमें मिट्टी भरी हुई मिली। कदाचित् यह स्तूप ठोस था और गृह-निर्माणकी मितव्ययिताके कारण भीतरकी ओर केवल ये दीवारें ही बना दी गई थीं। इनके कारण भीतरके कुल हिस्सेमें ईंट चिननेकी जरूरत न रही। स्तूपके बाहरकी ओर तीर्थंकरोंकी प्रतिमायें बनीं थीं।

कालनिर्णय—भाग्यवश इस स्तूपमें बनी हुए एक प्रतिमाके सिंहासनका एक अंश मिल गया है। उस पर एक लेख है। लेखके बीचमें धर्मचक्र है जिसकी कई स्त्रियाँ पूजा कर रही हैं। लेख यह है:—

"सं ७९ व्र दि २० एतस्यां पुर्व्वायां कोट्टिये गणे वैरायं शाखायां को अयवृिधहस्ति अर्हतो नंदि (आ) वर्तस प्रतिमं निर्वर्तयति .....भार्य्यये श्राविकाये (दिनाये) दानं प्रतिमा वोद्धे थूपे देवनिर्मिते प्र।"

अनुवाद—संवत् ७९ में, वर्षाके ४ थे महीनेमें, २० वें दिन अयवृिधहास्ति (आर्यवृद्धहस्तिन) ने—जो वैरशाखाके कोट्टिया गण-के उपदेशक हैं, अर्हत् नंदिआवर्त (नान्द्यावर्त) की प्रतिमाके बनाने-की सलाह दी.....यह प्रतिमा, जो.....की भार्या श्राविका दिना (दत्त) का दान है, देवनिर्मित बौद्ध स्तूप पर लगाई गई[३]।

१. एक स्थान पर ७० फीट भी लिखा है। २. फुहररने अर्हत् नान्द्यावर्तको अरःनाथ माना है और यह लिखा है कि अरःनाथका चिह्न नान्द्यावर्त है। न मालूम यह कहाँतक ठीक है। ३. इस लेखके शिलालेखोंके अनुवाद अंगरेज़ी अनुवादसे अनुवादित हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेखकी लिपि, भाषा और व्याकरणसे मालूम होता है कि यह प्रतिमा कुशन राजाओंके समयकी है। सं. ७९ भी कुशन राजाओंका संवत् है। संवत् दिवस इत्यादिकी प्रत्येक पूर्ण संख्याके लिए इस लेखमें एक एक चिह्न दिया है। संख्या लिखनेकी यह प्रथा बहुत प्राचीन है। यह भी एक प्रमाण इस संवतके प्राचीन होनेका है। इस संवतमें राजा वासुदेव राज्य करते थे। शक सं० ७९ में ७९+७८ अर्थात् ई० सन् १५७ था। उस समय भी यह स्तूप इतना प्राचीन था कि इसको 'देवनिर्मित' मानते थे। अतएव यह स्तूप ईसासे कई शताब्दि पहले बना होगा।

तीर्थकल्प नामक ग्रंथमें इस 'देव-निर्मित-स्तूप' का वर्णन लिखा है। यह ग्रंथ प्राचीन ग्रन्थोंके आधार पर ईसाकी १४ वीं शताब्दिमें प्रभाचन्द्र द्वारा लिखा गया था। इसमें लिखा है कि पहले यह स्तूप सुवर्णका था और इसमें रत्न जड़े थे। इसे मुनि धर्मरुचि और धर्मघोषकी इच्छासे कुवेरा देवीने श्रीसुपार्श्वनाथको समर्पण किया था। श्रीपार्श्वनाथके समयमें यह स्तूप ईंटोंसे मढ़ा गया और पाषाणका एक मन्दिर इसके बाहर बनाया गया। पुनः वीर भगवानके केवलज्ञान प्राप्त करनेके १३०० वर्ष बाद बप्पभट्टि सूरिने इस स्तूपको पार्श्वनाथके निमित्त अर्पण करके इसकी मरम्मत कराई। श्री महावीरको केवलज्ञानकी प्राप्ति ईसासे लगभग ५५० वर्ष पहले हुई थी। अतएव इस स्तूपकी मरम्मत १३०० वर्ष बाद अर्थात् ७५० ई० में हुई होगी। और श्रीपार्श्वनाथके समयमें इसके ईंटोंसे बनाये जानेका काल ईसासे ६०० वर्षसे भी पूर्व निश्चित होता है। यदि हम लेखके 'देव-

१. शक, जो ई० सन् ७८ से शुरू हुआ। २. इसका दूसरा नाम राजप्रसाद है। इस ग्रंथमें स्तूपोंके पूजन इत्यादिका भी वर्णन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्मित' शब्दको साधारण दृष्टिसे देखें तो यह कहना पड़ेगा कि शक ७२ में भी यह स्तूप अतीव प्राचीन समझा जाता था—इसके बनानेवालेका लोगोंको पता ही न था। अतएव इसके बननेका समय ईसासे ६०० वर्ष पूर्व मानना कुछ भी अनुचित नहीं। अतएव भारतवर्षकी अबतक जितनी इमारतें मालूम हुई हैं उनमें यह स्तूप संभवतः सबसे प्राचीन है। एक और जैन स्तूप पर बहुत छोटासा लेख मिला है। वह ईसाकी तीसरी या चौथी शताब्दिका है।

आयाग-पट।

इन स्तूपोंके अतिरिक्त कई 'आयागपट' भी मिल चुके हैं जिन पर स्तूपोंके चित्र अंकित हैं। ये सब इस बातको पुष्ट करते हैं कि किसी समय जैनियोंमें भी स्तूप बनानेकी प्रथा खूब प्रचलित थी। मालूम होता है कुछ काल तक रहनेके बाद वह प्रथा उठ गई। आयागपट पाषाणके पट होते हैं। इनमेंसे दो चार पटोंके लेखोंसे मालूम होता है कि ये मंदिरोंमें अर्हंतोंकी पूजाके लिए रक्खे जाते थे। इनमेंसे अधिकांशमें अर्हंतोंकी प्रतिमायें अंकित हैं और भी बहुतसे जैनधर्मसंबंधी चिह्न, स्वस्तिका, मछली इत्यादि बने हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक चिह्न और बेलबूटे बने रहते हैं। इनकी शोभा और चित्रकारी देखते ही बनती है। यहाँ पर केवल उन आयागपटोंका वर्णन किया जाता है जिनपर स्तूपोंके चित्र अंकित हैं।

१— एक आयागपटमें बीचमें एक तीर्थंकरका चित्र है, नीचे भी एक ऐसा ही चित्र है, और ऊपर एक स्तूपका चित्र है। और भी बहुतसे स्त्रीपुरुषोंके चित्र बने हैं। इसका लेख मिट गया है।

२—एक संपूर्ण आयागपटमें स्तूपका बड़ा चित्र दिया है, परन्तु इसका उपरी अंश खंडित है। स्तूपके चारों तरफ *प्रदक्षिणापथ*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छोड़कर घेरा (Railing) बना है। ऐसा ही पथ स्तूपके कुछ ऊपर चलकर मौखकी तरह बना है। सामने एक तोरण है; उसपर बड़ी उत्तम चित्रकारी है। इस तोरणके ऊपरकी आड़ी पटरियोंसे बीचमें एक माला लटक रही है। तोरण तक चढ़नेके लिए चार सीढ़ियाँ है। स्तूपके दायें बायें एक एक नग्न स्त्री स्तूपके सहारे सिर और कुहनी टेके आभूषण पहने बड़े अंदज़ासे खड़ी है। सीढ़ियोंके दोनों ओर यह लेख है:—

"नमो अर्हतानं फगुयशस
नतकस भयाये शिवयशा
.....इ.....आ.....आ.....काये
आयागपतो कारितो
अरहत पुजाये

अनुवाद—अर्हतोंको नमस्कार। नृतक फगुयशा (फल्गुयशस) की स्त्री.....शिवयशा (शिवयशस) ने अर्हतोंकी पूजाके निमित्त एक आयागपट बनवाया।

३—मथुराके अजायबघरमें एक आयागपट है। यह पट संपूर्ण है; कहींसे भी खंडित नहीं। इसमें स्तूपका एक बड़ा चित्र है। इससे जैनस्तूपोंकी शकलका अच्छा ज्ञान हो सकता है। ऊपरके आयाग-पटसे भी यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। समान बातोंको छोड़कर इसकी विशेष बातोंका ही उल्लेख किया जाता है। इस स्तूपके इधर उधर दो बड़े और सुंदर स्तंभ हैं। एकके ऊपर चक्र है और दूसरेके ऊपर सिंह है। स्तूपके दोनों ओर तीन तीन चित्र हैं। ऊपरके दो चित्र उड़ते हुए हैं। ये नग्न हैं; कदाचित् मुनि होंगे। इनके नीचेके दो चित्र सुपर्ण अथवा किन्नर हैं; इनके पक्षियोंके समान नाखून और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंजे हैं। एकके हाथमें पुष्प और दूसरेके हाथमें माला है। इनके भी नीचे दो नग्न स्त्रियाँ स्तूपके सहारे झुकी खड़ी हैं। सीढ़ियोंके दोनों ओर एक एक चित्र है। इनमेंसे एक पुरुष बालकसहित है और दूसरी स्त्री है। यह साफ़ नहीं है। गुम्बज पर एक प्राकृतका लेख छह पंक्तिका है:—

"नमो आर्हतो वर्धमानस आराये गणिका-
ये लोणशोभिकाये धितु शमणसाविकाये
नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हातो देविकुल
आयाग-सभा प्रपा शिल (ा) प (ट्टो)पातस्ठ(ा) पितो निगथा-
नं अर्ह (ता) यतने स (हा) म (ा) तरे भगिनिये धितरे पुत्रेण
सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पुजाये।"

अनुवाद—अर्हत् वर्धमानको नमस्कार। श्रमणोंकी श्राविका आराय (आर्यायाः ?) गणिका लोणशोभिका (लवणशोभिका) की पुत्री नादाय (नंदायाः) गणिका वसुने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्बसहित अर्हत्का एक मंदिर, एक आयाग-सभा, ताल (और) एक शिला निर्ग्रंथ अर्हतोंके पवित्रस्थान पर बनवाये।

ऐसा मालूम होता है कि इस आयागपटके दोनों तरफ दो नग्न स्त्रियाँ पटकी ऊँचाईके बराबर और खड़ी थीं। पहले स्मिथ साहबने जो इसकी फोटो ली थी उसमें ये मौजूद हैं। दूसरी बार यह पट होली दरवाजेके पास कुएमें गिरा हुआ मिला। इसी हेर फेरमें ये स्त्रियाँ इससे अलग हो गई होंगी। अब ये अजायबघरमें अलग रक्खी हुई हैं।

इमारतोंके अंश।

आयाग-पटोंके अतिरिक्त जैनस्तूपोंके अस्तित्वके और भी प्रमाण लीजिए। इमारतोंके अंशों पर भी स्तूपोंके चित्र मिले हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१—कंकाली टीलेके एक जैनमंदिरके पास एक लम्बा पट मिला है। जैनमंदिरके पास मिलनेसे यह जैनपट ही मालूम होता है। इस पर लेख नहीं है। कदाचित् यह उस 'देवनिर्मितस्तूप' के तोरणकी एक पटरी हो। यह निश्चय करके प्राचीन है। इस पटमें विशेष बात यह है कि इसमें स्तूपके पूजनका दृश्य दिखाया गया है। इस पटके एक ओर बीचमें स्तूपका चित्र है। स्तूपके बायें ओर एक सुपर्ण और उसके पीछे तीन किन्नर हैं और दायें ओर एक सुपर्ण और दो किन्नर हैं। तीसरा किन्नर यहाँ पर और होगा क्योंकि उस स्थान पर कुछ मिट गया है। स्तूपके समीप इधर उधर दो वृक्ष हैं। इन्हीं पर सुपर्ण बैठे हुए अथवा उड़ते हुए मालूम होते हैं। इन सुपर्णों और किन्नरोंमेंसे कुछके हाथोंमें कटोरे और कुछके हाथोंमें पुष्प अथवा चमर हैं। पटके पीछेकी ओर एक जलूसका दृश्य है। इसमें तीन घोड़े, एक हाथी और एक बैलगाड़ी जा रही है। बैलोंकी पूँछ उनकी गर्दनकी रस्सीसे बंधी हैं; ऐसा ही सांचीके बौद्ध स्तूपोंके चित्रोंमें भी है। गाड़ीमें स्त्री व पुरुष सवार हैं। घोड़ों पर भी मनुष्य सवार हैं। दो घोड़ोंके साथ साईस भी हैं। कदाचित् यह जलूस पटकी दूसरी ओर बने हुए स्तूपके पूजनके लिए जारहा है।

२—एक और पट मिला है। यह भी किसी स्तूपके तोरणका अंश मालूम होता है। यह पट श्वेताम्बर-संप्रदायका मालूम होता है। इसके एक ओर एक मुनि चार मनुष्योंको उपदेश दे रहे हैं। इनमें एक राजा अथवा राजकुमार मालूम होता है। क्योंकि उसके ऊपर दूसरा मनुष्य छाता लगाये हुए है और उसके सिर पर एक मुकुट लगा है जो महाराज हुविष्कके सिक्कोंमें अंकित चित्रोंके मुकुटसे बहुत मिलता है। पटके पीछेकी ओर ऊपरके अंशमें एक स्तूप है और इसके दोनों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओर दो दो तीर्थंकर हैं; इनमेंसे एक पार्श्वनाथ हैं। नीचेके अंशमें एक लंगोटधारी मुनि हाथमें कपड़ा लिये हुए खड़े हैं; इनका नाम लेखसे 'कन्ह' मालूम होता है। इनके समीप चार स्त्रियाँ खड़ी हैं। कदाचित् उपदेश सुनने आई हैं। इनमेंसे एक नाग-कन्या मालूम होती है। क्योंकि उसके सिर पर नाग-फण हैं। यह पट महाराज वासुदेवके राजत्वकालका मालूम होता है। इसपर एक लेख इस प्रकार है:—

"सिद्धं सं ९५ (?) ग्रि २ दि १८ कोट्टिय (ा) तो गणातो थानियातो कुलातो वैर (ा तो) (शा) खातो आर्य अरह..... शिशिनि धामथाये (?) ग्रहदतस्य धि.....धनहथि....."

अनुवाद–सिद्धि। संवत् ९५ (?) में, ग्रीष्मके दूसरे महीनेमें, १८ वें दिन कोटियागण, थानियकुल, वैरशाखाके आर्य अरह....की शिष्या धामथा (?) के अनुरोधसे गृहदत्तकी पुत्री और धनधि (धनहस्तिन) की स्त्री.....का (दान).....।

एक स्त्रीके दायें तरफ 'अनध श्रेष्ठि विद्या' और मुनिके सिरके पास 'कन्ह श्रमणो' लिखा है।

३–एक तोरणका एक अंश मिला है जिसमें स्तूपका चित्र है। इसके साथ चार पंक्तियोंमें एक बड़ा जलूस है। कुछ लोग स्तूपका पूजन कर रहे हैं। इसमें तीन पीठिका भी बनी हैं। यह एक जैनमंदिर और अन्य जैनवस्तुओंके पास मिला है। अतः कदाचित् यह भी जैनियोंकी ही किसी इमारतका अंश है। इस पर लेख नहीं है।

मथुरासे जितने जैन लेख प्राप्त हुए हैं लगभग सबोंमें ही प्रतिमाओं इत्यादिका दान स्त्रियोंने किया है। यह बात प्राचीन स्त्रीसमाजकी धर्मरुचिको प्रकट करती है। इन लेखोंसे बहुतसे गणों, शाखाओं कुलों, आचार्यों इत्यादिका भी पता मिलता है। यदि इनकी और भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जियादह छानबीन की जाय, तो जैन इतिहासकी बहुतसी गुप्त और बहुमूल्य बातें मालूम हो सकती हैं।

'संशोधक।'

सांख्यदर्शन।

प्रस्तावना।

दर्शनशास्त्र भारतवर्षके सूक्ष्मातिसूक्ष्म आश्चर्यजनक पाण्डित्यके जाज्वल्यमान प्रमाण हैं। दर्शनशास्त्र कई हैं। सांख्यदर्शन भी उनमेंसे एक है। यह दर्शन बहुत प्राचीन और बहुत महत्त्वका है। प्राचीन शैलीके विद्वानोंमें यद्यपि इसकी विशेष चर्चा नहीं है, परन्तु आधुनिक विद्वान् इसे बहुत आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। वे कहते हैं कि जो हिन्दुओंके पुरावृत्त या इतिहासका अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें सांख्यदर्शनका अध्ययन अवश्य करना चाहिए—इसके बिना उसका सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता। क्योंकि हिन्दूसमाजकी पूर्वकालीन गति सांख्यप्रदर्शित मार्ग पर बहुत दूरतक होती रही है। जो वर्तमान हिन्दूसमाजका चरित्र जानना चाहते हैं, उन्हें भी सांख्यका अध्ययन आवश्यक है। सांख्यमें इस चरित्रके मूलका बहुत कुछ पता चलता है।

पृथिवीमें जिस धर्मके माननेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है—ईसाईयोंसे भी बढ़ी चढ़ी है, उस बौद्धधर्मका मूल सांख्यदर्शन ही मालूम होता है। वेदोंको नहीं मानना, निर्वाण और निरीश्वरता इन तीन बातोंसे बौद्धधर्मका कलेवर बना है और इन तीनका मूल सांख्यदर्शन है। निर्वाण सांख्यदर्शनकी मुक्तिका परिणाम मात्र है। यद्यपि सांख्यमें वेदोंके प्रति अवज्ञा स्पष्ट शब्दोंमें कहीं भी नहीं दिखलाई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देती, बल्कि उसमें वैदिकताके बहुत आडम्बर हैं, तथापि सांख्य-प्रवचनकारने वेदोंकी दुहाई देकर अन्तमें वेदोंका मूलोच्छेदन करनेमें कुछ भी नहीं उठा रक्खा है। बौद्धकी निरीश्वरता सांख्यदर्शनकी निरीश्वरताका ही रूपान्तर है। इस तरह जब सांख्यदर्शन बौद्धधर्मका मूल है और बौद्धोंकी संख्या सबसे अधिक है, तब कहना होगा कि पृथिवीमें जितने दर्शनशास्त्र अवतीर्ण हुए हैं, उनमें सांख्यके समान बहुफलोत्पादक और कोई नहीं हुआ।

इस बातका पता लगाना बहुत कठिन है कि सांख्यकी प्रथमोत्पत्ति कब हुई थी। संभवतः यह बौद्धधर्मके पहले प्रचारित किया गया था। कपिल मुनि इसके प्रणेता समझे जाते हैं, परन्तु उनके समयादिके जाननेका कोई उपाय नहीं है। इस समय उनके मूल ग्रन्थका या सांख्यसूत्रोंका भी कहीं पता नहीं है। बहुत लोगोंका ख़याल है कि सांख्यप्रवचन ही कपिलसूत्र है। परन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि उसके भीतर ही इस बातके प्रमाण मौजूद हैं कि वह बौद्ध, न्याय, मीमांसा आदि दर्शनोंके प्रचलित हो जानेपर रचा गया है; इन दर्शनोंका उसमें खण्डन किया गया है।

सांख्यदर्शनका मर्म।

सांख्यदर्शनका स्थूल मर्म इस प्रकार है:—

संसार दुःखमय है। जो कुछ थोड़ासा सुख दिखलाई देता है वह दुःखके साथ इस प्रकार मिला हुआ रहता है कि विवेचक उसे दुःखकी श्रेणीमें ही डालते हैं। अतएव यहाँ दुःखकी ही प्रधानता है; जब ऐसा है, तब मनुष्यजीवनका प्रधान उद्देश्य होना चाहिए दुःखमोचन। ज्यों ही किसी पर कोई दुःख पड़ता है त्यों ही वह उसके दूर करनेका उपाय करता है। भूखसे कष्ट हो रहा है, आहार कर लिया। पुत्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शोक हो रहा है, उसे भुलाकर किसी दूसरी ओर अपने चित्तको लगा दिया। परन्तु सांख्यकारके मतसे ये दुःखमोचनके वास्तविक उपाय नहीं हैं। क्योंकि इनके साथ उन्हीं सब दुःखोंकी अनुवृत्ति है—वे दुःख फिर भी होंगे। सच्चा उपाय अपवर्ग या मोक्षकी प्राप्ति है। प्रकृति और पुरुषके संयोगकी उच्छित्तिको मोक्ष कहते हैं। जो सुखदुःखका भोक्ता है, सांख्य उसी आत्माको पुरुष कहता है और पुरुषसे भिन्न जगतमें जो कुछ है, वह प्रकृति है।

पुरुष शरीरादिसे व्यतिरिक्त है। परन्तु दुःख शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं। ऐसा कोई दुःख नहीं है जो शरीरादिको दुःखका कारण न हो। जिन्हें मानसिक दुःख कहते हैं बाह्यपदार्थ ही उनके मूल हैं। हमारे वाक्यसे तुम अपमानित हुए। हमारा वाक्य एक प्रकृतिजन्य पदार्थ है। उसे तुमने श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया, इस लिए तुम्हें दुःख हुआ। अतएव प्रकृतिके अतिरिक्त और कोई दुःख नहीं है। परन्तु अब प्रश्न यह है कि प्रकृतिघटित दुःखका अनुभव पुरुषको क्यों होता है? पुरुष तो असंग है। जितनी अवस्थायें होती हैं सब शरीरकी होती हैं, पुरुषकी नहीं। सांख्यकार कहते हैं कि प्रकृतिके साथ संयोग ही पुरुषके दुःखका कारण है। यद्यपि प्रकृति और पुरुष जुदा जुदा हैं—दोनोंमें बाह्य और आन्तरिक व्यवधान है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें किसी प्रकारका संयोग है ही नहीं। यदि एक स्फटिकके पात्रके पास गुलाबका फूल रक्खा जाय, तो वह फूलके रंगके समान गुलाबी रंगका हो जायगा और इसलिए कहा जायगा कि फूल और पात्रमें एक प्रकारका संयोग है। प्रकृति और पुरुषका संयोग भी इसी प्रकारका है। जिस तरह फूल और पात्रमें व्यवधान रहने पर भी पात्रका वर्ण विकृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो सकता है, उसी प्रकार प्रकृतिसे जुदा रहने पर भी पुरुष विकारयुक्त होता है। परन्तु इस प्रकारका संयोग नित्य नहीं होता है—यह स्पष्ट ही दिखलाई देता है, इसलिए इसका उच्छेद हो सकता है। और इस संयोगका उच्छेद होनेसे दुःखके या विकृतिके कारण दूर हो सकते हैं। अतएव इस संयोगकी उच्छित्ति दुःखनिवारणका उपाय है और यही मोक्ष है।

यह प्रकृति-पुरुष-संयोगकी उच्छित्ति या मुक्ति विवेकके द्वारा प्राप्त हो सकती है। प्रकृति और पुरुषसम्बन्धी ज्ञानको विवेक कहते हैं। सांख्यप्रवचनकारके मतसे कर्म अर्थात् होम यागादिका अनुष्ठान पुरुषार्थ नहीं है। ज्ञान ही पुरुषार्थ है और ज्ञान ही मुक्ति है।

सांख्य ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं करता। वह सर्वविद्य सर्वकर्ता पुरुष मानता है, परन्तु इस प्रकारके पुरुषको मानकर भी वह उसे सृष्टिकर्ता नहीं मानता है। सृष्टिको भी वह नहीं मानता। उसके मतसे यह जगत प्राकृतिक क्रियामात्र है—यह स्वयं ही बनता बिगड़ता रहता है।

कका कारण **ख**; **ख**का कारण **ग**; **ग**का कारण **घ**; इस तरह कारणपरम्पराका पता लगाते लगाते एक स्थानमें अवश्य ही ठहरना पड़ेगा, क्योंकि कारणश्रेणी अनन्त कभी नहीं हो सकती। हम जिस फलको खा रहे हैं, वह अमुक वृक्षमें फला है, वह वृक्ष एक बीजसे उत्पन्न हुआ था, वह बीज अन्य वृक्षके फलसे उत्पन्न हुआ था और वह वृक्ष भी और एक बीजसे उत्पन्न हुआ था। इस तरह अनन्तानुसन्धान करने पर भी एक आदिम बीज अवश्य मानना पड़ेगा। इस तरह जगतमें जो आदिम बीज है, जहाँ कारणानुसन्धान बन्द हो जाता है, सांख्य उसी आदिम कारणको 'मूल प्रकृति' कहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सांख्य २५ पदार्थोंको मानता है। १ पुरुष, २ प्रकृति, ३ महत् (मन), ४ अहंकार, ५-९ पंचतन्मात्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), १०-२० एकादश इन्द्रिय (पांच ज्ञानेंद्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और अन्तरिन्द्रिय), २१-२५ स्थूलभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश)। इन्हीं पदार्थोंसे जगत् बना हुआ है। जगतकी मूलकारण प्रकृति है। प्रकृतिसे महत् महतसे अहंकार, अहंकारसे पंचतन्मात्र तथा एकादश इन्द्रियाँ और पंचतन्मात्रसे स्थूल भूत बने हैं।

निरीश्वरता।

सांख्यदर्शन निरीश्वरवादी है और इसी रूपमें उसकी प्रसिद्धि भी है। परन्तु कोई कोई लोग कहते हैं कि वह निरीश्वरवादी नहीं है। डाक्टर हाल ऐसे ही लोगोंमेंसे एक हैं। मेक्समूलर भी ऐसा ही मानते थे, परन्तु अब उनका मत बदल गया है। कुसुमांजलिके कर्त्ता उदयनाचार्य कहते हैं कि सांख्यमतावलम्बी 'आदि विद्वान'के उपासक हैं। अतएव उनके मतसे भी सांख्य निरीश्वर नहीं है। सांख्यप्रवचनके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुका कथन है कि 'ईश्वर नहीं है' यह कहना कापिलसूत्रका उद्देश्य नहीं है। अतएव इस विषयको कुछ विस्तारके साथ बतलानेकी आवश्यकता है कि सांख्यदर्शन निरीश्वर क्यों है।

सांख्यप्रवचनके प्रथम अध्यायका ९२ वाँ सूत्र उक्त निरीश्वरताका मूल है। वह सूत्र यह है:—"**ईश्वरासिद्धेः**"। पहले इस सूत्रका अभिप्राय समझ लेना चाहिए।

सूत्रकार इसके पहले 'प्रमाण' का वर्णन कर रहे थे। उन्होंने कहा है, प्रमाण तीन प्रकारके हैं;—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। ८९ वें सूत्रमें प्रत्यक्षका लक्षण बतलाया है—"**यत्सम्बन्धं सत्तदाकारोल्लेखिविज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्।**" अतएव जो सम्बन्ध नहीं है वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इस लक्षणमें दो दोष लगते हैं। एक तो यह कि योगिगण योगबलसे असम्बद्धको भी प्रत्यक्ष कर सकते हैं। आगेके ९०–९१ वें सूत्रोंमें सूत्रकारने इस दोषको अपनीत कर दिया। अब रहा दूसरा दोष यह कि ईश्वरका प्रत्यक्ष नित्य है, इस लिए उसके सम्बन्धमें 'सम्बन्ध' का लक्षण घटित नहीं हो सकता है, सो इसका उत्तर उक्त ९२ वें सूत्रसे सूत्रकार देते हैं कि ईश्वर सिद्ध नहीं है–ईश्वर है, इसका कोई प्रमाण नहीं है। अतएव उसके प्रत्यक्ष सम्बन्धमें व्यवहृत न होनेसे यह लक्षण दुष्ट नहीं हुआ। यहाँ पर भाष्यकार महाशय कहते हैं कि देखो, यह कहा गया है कि 'ईश्वर असिद्ध है' किन्तु यह तो नहीं कहा गया है कि 'ईश्वर नहीं है'।

न कहा गया हो, न सही, तथापि इस दर्शनको निरीश्वर कहना होगा। ऐसा शायद ही कोई नास्तिक होगा जो कहता होगा कि ईश्वर नहीं है। जो कहता हो कि इस प्रकारका कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि 'ईश्वर है' उसको भी नास्तिक कहना चाहिए।

'जिसके आस्तित्वका प्रमाण नहीं है' और 'जिसके अनस्तित्वका प्रमाण है' ये दो जुदा जुदा बातें हैं। लाल रंगके कौएके आस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं है, परन्तु साथ ही उसके अनस्तित्वका भी कोई प्रमाण नहीं है। किन्तु ऐसे चतुष्कोणके अनस्तित्वका प्रमाण है कि जो गोलाकार हो। यह तो निश्चित है कि आप गोलाकार चतुष्कोण नहीं मानेंगे; किन्तु पूछना यह है कि लालरंगका कौआ मानेंगे या नहीं? जिस तरह उसके अनस्तित्वका प्रमाण नहीं है उसी प्रकार उसके अस्तित्वका भी प्रमाण नहीं है। जहाँ अस्तित्वका प्रमाण नहीं है वहाँ नहीं मानेंगे। अनस्तित्वका प्रमाण नहीं है तो न रहने दो, परन्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब तक अस्तित्वका प्रमाण नहीं पावेंगे तब तक कभी न मानेंगे। जब अस्तित्वका प्रमाण पा जावेंगे तब मान लेंगे। प्रत्ययका या विश्वासका यही प्रकृत नियम है। जो विश्वास इससे उलटा होता है, वह भ्रान्ति है। "यद्यपि अमुक पदार्थ है, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है, तथापि वह हो तो हो भी सकता है" ऐसा सोचकर जो उस पदार्थके अस्तित्वकी कल्पना कर लेते हैं, वे भ्रान्त हैं। अतएव नास्तिकगण दो प्रकारके हुए। एक तो वे जो केवल ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाणाभाववादी हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर हो, तो हो भी सकता है। परन्तु वह 'है' ऐसा कोई प्रमाण नहीं है। दूसरे प्रकारके नास्तिक वे हैं जो कहते हैं कि केवल ईश्वरके अस्तित्वके प्रमाणोंका ही अभाव नहीं है इस बातके भी अनेक प्रमाण हैं कि ईश्वर नहीं है। आधुनिक यूरोपके अनेक लोग इसी मतके माननेवाले हैं। एक फरासीसी लेखक कहता है—"तुम कहते हो कि ईश्वर निराकार है, किन्तु साथ ही उसे चेतनादि मानसिकवृत्ति-विशिष्ट भी बतलाते हो। क्या तुमने कहीं चेतनादि मानसिक वृत्तियोंको शरीरसे जुदा देखा है? यदि कहीं नहीं देखा, तो या तो ईश्वर साकार है अथवा उसका अस्तित्व ही नहीं है। ईश्वरको तुम साकार तो कभी मानोगे नहीं, अतएव यही मानना पड़ेगा कि ईश्वर नहीं है।" ये दूसरे प्रकारके नास्तिक हैं।

"ईश्वरासिद्धेः।" यदि केवल इसी सूत्र पर भार डाला जाय, तो सांख्यको प्रथम प्रकारका नास्तिक कह सकते हैं। किन्तु उसने और भी अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध करनेका यत्न किया है कि ईश्वर नहीं है।

यहाँ पर सांख्यप्रवचनमें ईश्वरके अनस्तित्व सम्बन्धमें जितने सूत्र हैं उन सबको एकत्र करके उनका मर्म विस्तारके साथ समझाया जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सांख्यकार कहते हैं कि, ईश्वर असिद्ध है (अ०१, सू०९२)। कोई प्रमाण नहीं है इसीसे असिद्ध है (प्रमाणाभावात् नतत्सिद्धिः। ९, १०) सांख्यके मतमें पूर्वकथनानुसार तीन प्रमाण माने गये हैं;—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इनमेंसे प्रत्यक्षकी तो बात ही नहीं है—ईश्वर प्रत्यक्षका विषय ही नहीं माना जाता। किसी वस्तुके साथ यदि अन्य किसी वस्तुका नित्य सम्बन्ध रहता हो, तो एकके देखनेसे दूसरीका अनुमान किया जाता है। परन्तु किसी वस्तुके साथ ईश्वरका कोई नित्य सम्बन्ध नहीं देखा जाता; अतएव अनुमानके द्वारा भी ईश्वर सिद्ध नहीं हो सकता। (सम्बन्धाभावान्नानुमानम्। ९, ११) यदि इस सूत्रको पाठक अच्छी तरह न समझे हों, तो कुछ और भी अधिक स्पष्टतासे समझानेका यत्न करता हूँ। पर्वतमें धुएँको देखकर तुम सिद्ध करते हो कि वहाँ पर अग्नि है। इस प्रकारका सिद्धान्त तुम क्यों करते हो? इसलिए कि तुमने जहाँ जहाँ पर धुआँ देखा है वहाँ अग्नि भी देखी है अर्थात् अग्निके साथ धुएँका नित्यसंबंध होनेके कारण।

यदि कोई तुमसे आकर पूछे कि तुम्हारे प्रपितामह (परदादा) के कितने हाथ थे, तो तुम कहोगे कि दो। तुमने तो उनको कभी देखा नहीं फिर कैसे कह दिया कि उनके दो हाथ थे? तुम कहोगे, मनुष्यमात्रके दो हाथ होते हैं इसलिए। अर्थात् मनुष्यत्वके साथ द्विभुजताका नित्यसंबंध है इसलिए।

यह नित्यसम्बन्ध या व्याप्ति ही अनुमानका एक मात्र कारण है। जहाँ यह सम्बन्ध नहीं होता वहाँपर पदार्थान्तरका अनुमान नहीं हो सकता। अब इस प्रकरणमें जगतके किस पदार्थके साथ ईश्वरका नित्य सम्बन्ध है कि जिससे ईश्वरका अनुमान किया जा सके? सांख्यकार उत्तर देते हैं कि किसीके साथ नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा प्रमाण शब्द है। आप्तवाक्योंको शब्द प्रमाण माना है और वेद ही आप्तवाक्य हैं। सांख्यकार कहते हैं कि वेदमें ईश्वरका कोई प्रसंग नहीं है, बल्कि वेदमें यही कहा है कि सृष्टि प्रकृतिकी क्रिया है, ईश्वरकृत नहीं है (श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य। ५, १२) किन्तु जो वेदको पढ़ेंगे वे देखेंगे कि यह बात बिलकुल असंगत है—अर्थात् उन्हें उसमें ईश्वरके प्रसंग मिलेंगे। इस आशंकाका समाधान करनेके लिए सांख्यकार कहते हैं कि वेदमें ईश्वरका जो उल्लेख है वह या तो मुक्तात्माओंकी प्रशंसा है, या सामान्यदेवताकी (सिद्धस्य) उपासना। (मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासना सिद्धस्य वा। १, ९५)

यह दिखला दिया कि ईश्वरके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं है। अब सांख्यने ईश्वरके अनस्तित्वके सम्बन्धमें जो प्रमाण दिये हैं उनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है:—

ईश्वर किसे कहते हैं? जो सृष्टिकर्त्ता और पापपुण्यका फलविधाता हो उसे। जो सृष्टिकर्त्ता है वह मुक्त है या बद्ध? यदि वह मुक्त है तो उसके भी सृष्टि रचना करनेकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है? और यदि वह मुक्त नहीं बद्ध है तो फिर उसमें अनन्तज्ञान और अनन्तशक्ति सम्भव नहीं हो सकती। अतएव कोई एक व्यक्ति सृष्टिकर्त्ता है यह बात असंभव है। (मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः। १, ९३) (उभयथाप्यसत्करत्वम्। १, ९४)

यह तो हुई सृष्टिकर्तृत्वसम्बन्धी बात। अब पापपुण्यके दण्डविधातृत्व सम्बन्धकी बात लीजिए। इस विषयमें सांख्यकार कहते हैं कि यदि ईश्वर कर्मफलका विधाता है, तो यह अवश्य है कि वह कर्मानुयायी फल देगा। अर्थात् पुण्यकर्मका शुभफल देगा और पापकर्मका अशुभ फल। यदि वह ऐसा न करेगा, अपनी इच्छाके अनुसार फल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देगा, तो देखना चाहिए कि वह किस प्रकारसे फलविधान कर सकता है। यदि अच्छी तरह विचार करके फल न देगा, तो ऐसा वह आत्मोपकारके लिए ही—किसी स्वार्थके लिए ही कर सकता है और यदि ऐसा हुआ तो वह सामान्य लौकिक राजाके ही समान आत्मोपकारी और सुखदुःखके अधीन ठहरा। यदि ऐसा न मानके कहो कि वह कर्मके अनुसार ही फल देता है, तो फिर कर्मकोही फलका दाता विधाता क्यों नहीं कहते? फल देनेके लिए फिर कर्मके ऊपर ईश्वरानुमानकी क्या आवश्यकता है?

अतएव सांख्यकार दूसरे प्रकारके घोरतर नास्तिक हैं परन्तु पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि वे वेदको मानते हैं।

ईश्वर न मानकर भी सांख्य वेदको क्यों मानता है, इस बातको हम आगे लिखेंगे। मालूम होता है कि सांख्यकी यह निरीश्वरता बौद्ध धर्मकी पूर्व सूचना थी।

ईश्वरतत्त्वके सम्बन्धमें सांख्यदर्शनकी एक बात बाकी रह गई। पहले कहा जा चुका है कि—बहुतोंके खयालसे कापिल (सांख्य) दर्शन निरीश्वर नहीं है। यह कहनेका एक कारण है। तृतीय अध्यायके ५७ वें सूत्रमें सूत्रकार कहते हैं:—"ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धः।" अर्थात् इस प्रकारके ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध हुई। किस प्रकारके ईश्वरकी? "स हि सर्ववित् सर्व कर्त्ता" ३, ५६। अर्थात् जो सबका जाननेवाला और सर्वकर्त्ता है। ऐसी अवस्थामें सांख्य निरीश्वर कैसे हो सकता है?

वास्तवमें ये सूत्र ईश्वरके सम्बन्धमें नहीं कहे गये हैं। सांख्यकार कहते हैं कि ज्ञानमें ही मुक्ति है, और किसीसे भी मुक्ति नहीं हो सकती। पुण्यमें अथवा सत्त्वविशाल ऊर्द्धलोकमें भी मुक्ति नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि वहाँसे पुनर्जन्म होता है और जरामरणादि दुःख भोगना पड़ते हैं। अन्तमें वे यह भी कहते हैं कि जगत कारणमें लयप्राप्त हो जाने पर भी मुक्ति नहीं है। क्योंकि उस (लयप्राप्त अवस्था) से जलमें डूबे हुए के पुनरुत्थान (फिरसे ऊपर आ जाने) के समान पुनरुत्थान होता है। (३, ५४)। पूर्वोक्त सूत्र उन्होंने उसी लयप्राप्त आत्माके सम्बन्धमें कहा है कि वह सबका जाननेवाला और सर्वकर्त्ता है। उसको यदि तुम ईश्वर कहना चाहो तो ईदृशेश्वर सिद्ध है। परन्तु वह जगत्सृष्टा या विधाता नहीं हो सकता। उक्त सूत्रमें जो 'सर्वकर्त्ता' शब्द है, उसका अर्थ सर्वशक्तिमान् है, सर्वसृष्टि-कारक नहीं। * (अपूर्ण)

पुस्तक परिचय।

२९. **सुरस ग्रंथमाला**—श्रीयुक्त शेठ बालचन्द रामचन्द कोठारी, बी. ए. और श्रीयुक्त तात्या नेमिनाथ पांगलने इस मराठी ग्रन्थमालाके निकालनेका प्रारंभ किया है। इसमें सर्वसाधारणोपयोगी सरस और मनोरंजक उपन्यास प्रकाशित होते हैं। स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ आधे मूल्यमें दिये जाते हैं। अब तक इसमें पाँच ग्रन्थ निकल चुके हैं। **पतिपत्नीप्रेम** और **सम्राट् अशोक** ये दो ग्रन्थ हमें समालोचनाके लिए प्राप्त हुए हैं। पहला ग्रन्थ डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'चोखेरवाली' उपन्यासका अनुवाद है। अनुवाद हमारी प्रकाशित की हुई 'आँखकी किरकिरी' परसे किया गया है। अनुवादक हैं श्रीयुत सेठ बालचन्द रामचन्द कोठारी बी. ए.। रवीन्द्रबाबूके इस उपन्यासकी प्रशंसा करनेकी आवश्यकता नहीं। मनुष्यके आन्तरिक भावोंका चित्र खींचनेमें लेखकने बड़ा ही विलक्षण कौशल दिखलाया है।

* स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके बंगला लेखका संक्षिप्त अनुवाद।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मराठीके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकरने इस पुस्तककी भूमिका लिखी है जो कि पढ़ने योग्य हुई है। हमारी समझमें यह न आया कि इस पुस्तकका नाम पतिपत्नीप्रेम 'क्यों रक्खा गया' पुस्तकके विषयके साथ इस नामका यत्किञ्चित भी सम्बन्ध नहीं है। दूसरा ग्रन्थ **सम्राट् अशोक** श्रीयुक्त बालचन्द रामचन्द शहा वकीलने लिखा है। वकील साहबकी यह स्वतन्त्र रचना है। प्रसिद्ध मौर्यचक्रवर्ती अशोकने जिस समय कलिंगदेश पर विजय प्राप्त किया था और उसे अगणित मनुष्योंकी व्यर्थ हिंसासे उद्वेग हुआ था उस समयकी कुछ ऐतिहासिक घटनाओंको लेकर इस उपन्यासकी रचना की गई है। कथानक बहुत ही कुतूहलवर्धक, मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। कथानायकोंके और दूसरे पात्रोंके चित्र जैसे चाहिए वैसे खींचे गये हैं। वे भावपूर्ण हैं और उन्होंने अपने स्वरूपकी रक्षा अन्ततक की है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लेखक महाशयने अपनी इस पहली ही कृतिमें बड़ी भारी सफलता प्राप्त की है। इसके लिए हम उन्हें बधाई देते हैं। परन्तु हमें इस विषयमें सर्वथा सन्देह है कि कलिंगविजयके पहले अशोक बौद्धधर्मका प्रचार शस्त्रोंके बल पर करता था, या धर्मके लिए वह मनुष्यवध जैसे घोर पाप करनेमें न हिचकता था। लेखक महाशयको ग्रन्थके प्रारंभमें जिन ऐतिहासिक बातोंपर इस उपन्यासकी नीव खड़ी की गई है उनका स्पष्टीकरण कर देना चाहिये था। दोनों ग्रन्थोंका मूल्य डेढ़ डेढ़ रुपया है। इस ग्रन्थमालाके प्रकाशक और लेखक सभी जैनी हैं। यह प्रसन्नताकी बात है कि जैनसमाजके शिक्षित सार्वजनिक साहित्यकी सेवामें भी प्रवृत्त होने लगे हैं। ग्रन्थमाला की सब पुस्तकें तात्या नेमिनाथ पांगल ठि० मोहन बिल्डिंग गिरगांव–बम्बईसे मिलती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३० **आल्बम या चित्रसंग्रह**—सूरतके दिगम्बर जैनके पिछले खास अंकमें जो चित्र निकले थे, उन सबका इसमें संग्रह है। सब मिलकर ५९ चित्र हैं। चित्रोंका विवरण भी साथमें दिया हुआ है। मूल्य बारह आना है। मँगानेका पता—सम्पादक दिगम्बर जैन, चन्दाबाड़ी, सूरत।

३१ **पवनदूत**—लेखक, पं० उदयलालजी काशलीवाल। प्रकाशक, हिन्दी जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय, चन्दावाड़ी पो. गिरगांव-बम्बई पृष्ठसंख्या, ५६। मूल्य चार आना। यह जैनसाहित्य सीरीजकी तीसरी पुस्तक है। इसमें श्रीवादिचन्द्रसूरिका संस्कृत पवनदूत काव्य और उसका हिन्दी भावार्थ है। विजयनगर नरेशकी सुतारा नामकी स्त्रीको अशनिवेग नामका विद्याधर हरण कर ले गया। उसके विरहमें राजाकी बुद्धि ठिकाने न रही। उसने पवनको अपना दूत बनाया और उससे कहा कि तू परोपकारी है, मुझ पर दया कर और अमुक अमुक रास्तेसे इस इस तरह जाकर मेरी स्त्रीसे मेरा विरहकष्ट निवेदन कर और उसे धीरज बँधा। इसी कथानकको लेकर इस काव्यकी रचना हुई। कालिदासके मेघदूतकी छाया पर जिस तरह वायुदूत, हंसदूत, कोकिलदूत, पदाङ्कदूत आदि कई काव्य बने हैं उसी तरहका यह भी है। इसमें १०० श्लोक हैं। रचना प्रसादगुणविशिष्ट है। किसी किसी श्लोकका भाव तो बहुत ही मर्मस्पर्शी है। निर्णयसागरकी काव्यमालामें यह काव्य बहुत वर्षों पहले छप चुका है। परन्तु हिन्दी जाननेवाले उससे लाभ न उठा सकते थे। अब इस भावार्थसे साधारण हिन्दी जाननेवाले भी काव्यका आशय समझ सकेंगे। भावार्थ साधारणतः अच्छा लिखा गया है; परन्तु उसके लिखनेमें जितना परिश्रम करना चाहिए था उतना नहीं किया गया। कई श्लोकोंका आशय अस्पष्ट रह गया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है और कईका आशय च्युत हो गया है। भूमिकामें कोई महत्त्वकी बात नहीं। उसमें और नहीं तो दो बातोंका उल्लेख अवश्य चाहिए था—एक तो वादिचन्द्रसूरि कब और—कहाँ हुए हैं और दूसरे विजय-नरेश तथा सुताराकी कथा किस ग्रन्थसे किस प्रकार संक्षिप्त या परिवर्तित करके ली गई है। इन दो एक त्रुटियोंके सिवाय पुस्तक अच्छी और संग्रहणीय है। भाषा सरल और सबके समझने योग्य है। छपाई सुन्दर है। काव्यप्रेमी सज्जनोंको अवश्य पढ़ना चाहिए।

३२. जैनधर्म—लेखक, श्री उपेन्द्रनाथदत्त। प्रकाशक, कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन, मंत्री सार्वधर्म परिषत्, काशी। पृष्ठसंख्या १६०। बिना मूल्य वितरित। पुस्तक बंगला भाषामें है। इसमें १ जैनशब्दकी परिभाषा, २ जैनधर्मके मुख्य तत्त्व, ३ उपदेशक्रम, ४ स्याद्वाद वा अनेकान्तवाद, ५ दार्शनिक सिद्धान्त, ६ तुलनामूलक दार्शनिकत्व, ७ नास्तिकता और आस्तिकता, ८ जैनधर्म और दूसरे धर्मोंकी समानता, ९ जैन धर्मानुयायियोंका बहिर्जीवन, १० ऐतिहासिकता, ११ चौवीस तीर्थंकर, १२ पन्थ और उसके विभाग, इन बारह निबन्धोंका संग्रह है। निबन्ध पहले बंगलाके 'उद्बोधन' और 'देवालय' नामक पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके थे। अब संग्रह करके पुस्तक रूपमें प्रकाशित किये गये हैं। उद्बोधनपत्रके सम्पादककी लिखी हुई लगभग ५० पृष्ठकी एक विस्तृत भूमिका भी इस पुस्तकमें जोड़ दी गई है। इसमेंके कुछ निबन्ध सेठ हीराचन्दजी नेमीचन्दजीके 'जैनधर्मका परिचय' नामक व्याख्यानके कुछ घटा बढ़ा कर किये हुए अनुवाद हैं और कुछ दूसरे लेखोंके रूपान्तर हैं। तुलनामूलक दार्शनिकत्व आदि दो तीन निबन्ध लेखक महाशयके स्वतन्त्र रूपसे लिखे हुए हैं। निबन्धोंके लिखनेका ढंग अच्छा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अजैनोंको जैनधर्म इसी ढंगसे समझाया जा सकता है। परन्तु अनेक स्थलोंमें विशेष करके तत्त्व कर्म गुणस्थानादिके स्वरूपमें भूलें रह गई हैं। कोई कोई भूलें बड़ी ही विलक्षण हैं। ११७ वें पृष्ठमें लिखा है—" इस समय दिगम्बर जैनी उन्माद " नामसे और श्वेताम्बर 'तप्पा' नामसे सर्व साधारणमें परिचित है। बहुत लोग दिगम्बरी छोटे साधुओंको 'पण्डित' कहते हैं और बड़े साधुओंको 'भट्टारक'।" माळूम नहीं किस देशमें और किस भाषामें ये 'उन्माद' और 'तप्पा' शब्द प्रचलित हैं। हमने तो इससे पहले ये शब्द कहीं सुने भी न थे। छोटे और बड़े साधुओंकी पहचान भी खूब कराई गई है। कई लेखोंमें विशेषकरके भूमिकामें इस सिद्धान्तके पुष्ट करनेकी चेष्टा की गई है कि जैनधर्म यद्यपि वेदोंको प्रामाण्य नहीं मानता है तथापि पारमार्थिक हिसाबसे वह मूलमें वेदानुसरणकारी ही है। जैनधर्मका शरीर जिन उपकरणोंसे बना है वे सब वेदों तथा उपनिषदोंसे लिये गये हैं। जैनधर्म प्राचीन अवश्य है। परन्तु पहले वह कोई दार्शनिक मत नहीं था। उसके अनुयायी साधु उस समय मोक्षसाधकही थे दार्शनिक न थे। इसी लिए महावीरके पहलेका जैन साहित्य नहीं है। यदि जैनधर्म दार्शनिक सम्प्रदाय होता तो जैनमोक्षपन्थियोंके सूत्र वा उपनिषत् ग्रन्थ अवश्य होते। उस समयका जैनसाधुसम्प्रदायने तत्त्वविचारसे उदासीन होकर व्रतनियमादिके ऊपर ही अपना साम्प्रदायिक विशेषत्व प्रतिष्ठित रक्खा था, इसका मुख्य प्रमाण उनका उद्भावित किया हुआ 'स्याद्वाद' है। यह स्याद्वाद या सप्तभंगी नय जिस सम्प्रदायके द्वारा उद्भावित हुआ है, यह सम्प्रदाय तत्त्वविचारमें व्यर्थ कालक्षेप न करेगा, यही अधिक संभव माळूम होता है। कई स्थानोंमें सांख्यदर्शनके साथ जैनधर्मका मिलान किया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया है और बतलाया है कि सांख्यदर्शन और जैनदर्शनमें बहुतही थोड़ा अन्तर है और चूँकि सांख्यवेदानुयायी है, अतएव जैन भी वेद-वृक्षकी एक शाखा है। इस तरहकी और भी बीसों बातें हैं जिन्हें हमारी समझमें बहुत ही कम जैनी माननेको तैयार होंगे बल्कि मंत्री महाशय स्वयं ही उन्हें माननेसे इंकार करेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि इसकी भूमिकाके तुलनात्मक दार्शनिकत्व आदि लेखोंमें प्रकट किये हुए विचार बहुत ही महत्वके और पाण्डित्य पूर्ण हैं और वे माननीय न होने पर भी आदरकी दृष्टिसे देखने योग्य हैं, तो भी एक जैनसंस्थाके द्वारा—जो कि एक भाषाके साहित्यमें जैनधर्मके उन सिद्धान्तोंका परिचय करानेके लिये स्थापित हुई है जो जैनधर्मके प्राचीन आचार्योंने प्रकट किये हैं—इस प्रकारके विचारोंका प्रकाशित होना अच्छा नहीं समझा जा सकता। उक्त विचारोंको पढ़-कर जैनधर्मके जिज्ञासु जैनेतर पाठकोंको यह भ्रम हो सकता है कि ये विचार जैनियोंको भी मान्य होंगे। क्यों कि यह पुस्तक जैनियोंके द्वारा प्रकाशित हुई है। पुस्तकके अन्तमें जैनधर्मकी दिगम्बर श्वेता-म्बर शाखाओंके विषयमें एक परिशिष्ट लेख है। उसमें श्वेताम्बर सम्प्रदायको आधुनिक और दिगम्बर सम्प्रदायको प्राचीन सिद्ध कर-नेका प्रयत्न किया गया है। हमारी समझमें इसकी जरूरत न थी। हमारे अपने घरके झगड़े दूसरोंके आगे प्रकट करनेसे लाभ नहीं है। जैनधर्मके सम्बन्धमें हम जैनेतर समाजोंमें जो कुछ प्रयत्न करें वह यदि हिल मिल करें—अपने आपसी झगड़े भुलाकर—करें तो विशेष सफलता प्राप्त हो सकती है। मंत्री महाशयसे हमारा नम्र निवदेन यह है कि संस्थाके द्वारा जो कोई पुस्तक प्रकाशित हो, उसे आप स्वयं अच्छी तरह पढ़लें और उस विषयके जाननेवाले किसी दूसरे विद्वानको

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिखला लेवें। तब प्रकाशित करें। यह पुस्तक सेठ नाथारंगजी गांधी आकलूज निवासीके द्रव्यसे प्रकाशित की गई है।

आजकल इस संस्थाका कार्य ठंडासा पड़ गया है। वर्षोंमें एकाध पुस्तक निकल जाती है। हिसाब तो इसका अब तक प्रकाशित ही नहीं हुआ। हम लोग आरम्भशूरतामें बहुत आगे बढ़ रहे हैं।

३३ परमात्माने पगले (In his footsteas)--लेखक, पण्डित लालन। प्रकाशक, मेसर्स मेघजी हीरजी एण्ड कम्पनी, पायधूनी, बम्बई। मूल्य दो आना। इस छोटेसे गुजराती निबन्धमें महावीर भगवानके जीवनचरितसे शिक्षा लेनेकी—उनका अनुकरण करनेकी प्रेरणा की गई है। मालूम होता है, यह निबन्ध आगे और कई भागोंमें प्रकाशित होगा। इस भागमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंके अनुसार वीरभगवानके कई अनुकरणीय गुण बतलाये गये हैं—१ गर्भमें आने-पर भगवान्ने यह सोचकर—कि माताको कष्ट होगा—हलन-चलन बन्द कर दिया था। २ हलनचलन बन्द होनेसे माताने समझा कि गर्भ नष्ट होगया, इससे उन्हें बहुत कष्ट हुआ। तब भगवानने अपनी भूल सुधारी और फिर हलनचलन शुरू किया। ३ दीक्षा लेनेसे परमो-पकारी माता पिताको कष्ट होगा, यह सोचकर भगवानने एक निश्चित समय तक दीक्षा न ली और इस तरह मातापिताके हितके लिए अपने लिए आर्त रौद्र ध्यान करनेसे उन्हें कुगतिका बन्ध न हो, इस खया-लसे उन्होंने अपने मोक्षप्राप्तिरूप स्वार्थका बलिदान किया। इत्यादि। निबन्ध बिलकुल नये ढंगसे लिखा गया है और इस समयमें जब मातापिताकी भक्ति बहुत ही कम होती जाती है, ऐसे उपदेशोंकी आवश्यकता भी बहुत है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३४ आरोग्यता प्राप्त करनेकी नवीन विद्या (पूर्वार्ध) लेखक और प्रकाशक, श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप बी. ए., एलएल. बी., वकील, मुरादाबाद । पृष्ठसंख्या ४१४ । मूल्य ३।) । जर्मनीमें 'लुई कुहनी। नामके एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं । आपने इस नवीन विद्याका आविष्कार किया है । यह विद्या है जलचिकित्सा । इसके अनुसार केवल ठंडे और गरमपानीके तथा आपके चार पांच प्रकारके स्नानोंसे शरीरके सब प्रकारके रोग आराम हो जाते हैं । अमीरसे लेकर गरीब तक सब इससे बहुत ही सुगमतासे लाभ उठा सकते हैं । हर स्थानमें विना किसी तरहके खर्चके यह चिकित्सा की जा सकती है । इसके अनुसार शरीरसम्बन्धी जितने रोग हैं उन सबका निदान एक ही है--जुदा जुदा रोगोंका जुदा जुदा निदान करनेकी कठिनाई इसमें नहीं है और इस लिए किसी डाक्टर या वैद्यका आसरा लेनेकी जरूरत नहीं रहती । शरीरके भीतर हानिकारक खराब पदार्थ एकत्र हो जानेसे रोग उत्पन्न होते हैं और यदि वे पदार्थ किसी तरह सुगमतासे निकाले जा सकें तो रोग शान्त हो जाते हैं । डाक्टर साहबके बतलाये हुए स्नानोंमें उक्त हानिकारक पदार्थोंके अलग करनेकी विलक्षण शक्ति है । यह स्नान प्रक्रिया बहुत ही सहज है; परन्तु इससे कठिनसे कठिन रोग जो किसी भी प्रकारकी चिकित्सासे आराम नहीं हुए हैं आराम हो जाते हैं । संसारके सारे चिकित्सा शास्त्रोंको डाक्टर साहब अप्राकृतिक और हानिकारक बतलाते हैं । वे कहते हैं कि सब प्रकारकी चिकित्साओंसे रोग कुछ समयके लिए जबर्दस्ती दबा दिये जाते हैं परन्तु नष्ट नहीं किये जा सकते । कुहनी सा० की इस नई विद्याने संसारमें बड़ा आदर पाया है । आपकी इस विषयकी पुस्तकका संसारकी २९ प्रसिद्ध भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है । जर्मन भाषामें इस पुस्तककी १००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और अँगरेजीमें २० आवृत्तियाँ छप चुकी हैं। इस परसे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि आपकी यह विद्या कितनी लोकप्रिय हुई है। यह पुस्तक आपकी ही पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। इंडियन प्रेसमें इस विषयकी एक छोटीसी चार आनेकी पुस्तक बहुत वर्षों पहले छप चुकी है, उससे हिन्दी जाननेवाले इस विद्यासे थोड़ा बहुत परिचय प्राप्त कर चुके हैं। अब इस सम्पूर्ण अनुवादसे इस विद्याका सोपपत्तिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वकील साहबने यह अनुवाद करके हिन्दीका बड़ाभारी उपकार किया है। हम सिफारिश करते हैं कि प्रत्येक रोगी और निरोगी व्यक्तिको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। जो रोगी हैं वे इसके द्वारा रोगमुक्त हो सकेंगे और जो निरोगी है वे कभी रोगके पञ्जेमें न फँसेंगे। जैनी भाइयोंको तो यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। क्योंकि जैनियोंके लिए तो इससे अच्छी शुद्ध और पवित्र चिकित्सा और कोई हो नहीं सकती। इसका 'हम क्या खावें और क्या पीवें' नामका अध्याय तो खाद्याखाद्यका विचार करनेवालोंके बहुत ही कामका है। कुहनी साहबने मद्यमांस आदिके भोजनका बड़े जोरसे निषेध किया है। मनुष्यके लिए वे अन्न, दूध, फल आदिका भोजनही परमोपकारी बतलाते हैं। उनके विचारसे जो भोजन जितनाही सादा, प्राकृतिक, तरह तरहके चटपटे मसालोंसे रहित और सहज प्रक्रियासे पकाया हुआ होगा वह उतना ही लाभकारी होगा। इस बहुमूल्य पुस्तकके कई दोष बहुत ही खटकते हैं। एक तो इसकी भाषा अच्छी नहीं, दूसरे छपाई अच्छी नहीं। इसमें जो चित्र दिये हैं वे इतने भद्दे छपे हैं कि 'उनसे न छपना अच्छा था।

३५. **शिशु-शिक्षा**—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत नारायण प्रसाद अरोड़ा, बी. ए. पटकापुर, कानपुर। पृष्ठसंख्या २२ मूल्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक आना। बच्चा पांच वर्षकी अवस्था तक शिशु कहलाता है। पुस्तकोंकी शिक्षाका प्रारंभ इसके बाद होता है इसके पहले उन्हें शारीरिक, मानासिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा कैसे और किस ढंगसे देना चाहिए, इसी बातका इस छोटीसी पुस्तकमें विचार किया गया है। जिनके घरमें बच्चे हैं, उन्हें इसे एक बार अवश्य पढ़ जाना चाहिए। भाषा सरल है।

आदर्श आर्या।

१

मुर्शिदाबादके सुप्रसिद्ध जमींदार बाबू महताबचन्द्रके अंतःपुरमें प्रवेश करके आज हम एक असामान्य रूप गुणशीला आर्यपत्नीके दर्शन करते हैं उसके मुखमण्डल पर आश्चर्यजनक सुन्दरताके पवित्रताका विलक्षण संयोग हो रहा है। उसके आकर्णविस्तृत लोचनोंसे दया दृढता और उदारता टपक रही है। उसके सुगठित शरीरमें यौवनका मनोहारी प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है; परन्तु वह आतापकारी नहीं है—शीतल और शान्त है। उसके वस्त्राभूषण यद्यपि बहुमूल्य हैं परन्तु उनका उपयोग इस ढंगसे किया गया है कि उनमेंसे गर्व और उद्धतताके बदले नम्रता और निर्मल शीलके पवित्र परमाणु निकलकर चारों और फैलते हैं। उसका अन्वर्थक नाम असामान्या है। वह अपनी कुछ साखियोंके साथ निर्दोष हास्यविनोदमय वार्तालाप कर रही है। इसी समय वहाँ एक बेजान पहचानकी स्त्री आकर खड़ी हो गई। उसके मुँहपर बुरखा पड़ा हुआ था। बेषभूषासे वह कोई उच्चकुलकी मुसलमान स्त्री मालूम होती थीं। कुछ समय तक वह असामान्याके सामने खड़ी रही और टकटकी लगाकर उसकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और देखती रही। असामान्या चाहती थी कि इस स्त्रीका परिचय पूछूँ और उससे बैठनेके लिए कहूं कि इतनेमें वह बुरखा फेंककर इसकी ओर बाहें पसारकर आलिंगन करनेके लिए झपटी। असामान्याने देखा कि वह स्त्री नहीं किन्तु दाढ़ी मूछोंसे युक्त एक मुसलमान पुरुष है।

(२)

आर्यपत्नी पहले तो दिग्मूढसी हो रही; परन्तु तत्कालही कर्तव्यको सोचकर उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे दूर धकेल दिया और अपने पतिको यह संवाद देनेका निश्चय किया। वह दौड़कर जीनेके पास तक ही पहुँची थी कि इतनेमें उसके हृदयमें दयाका सोता वह निकला। मनहीमन कहने लगी—'अवश्य ही यह नवाब सिराजुद्दौला है। इतने बड़े प्रतिष्ठित और उच्चकोटिके पुरुषकी दुर्दशा कराके मैं इसे नीचीसे नीची अवस्थामें पटक दूँ, यह मेरे लिए कदापि उचित नहीं है। संभव है कि मैं इसे समझा बुझाकर मार्ग पर ले आसकूँ और आजतक सैकड़ों आर्यपत्नियों और आर्यकन्याओंपर अत्याचार करनेवाला एक पतितात्मा दयाजनक अन्धकारमेंसे मुक्त होकर प्रकाशमें आजाय तब मैं इसकी दुर्दशा क्यो कराऊँ?" यह सोचकर वह लौट आई और अपनी सखियोंसे तीव्र स्वरसे—बोली यह अपना घर है; यहाँ डरनेकी और भागनेकी कोई जरूरत नहीं। तुम सब हिम्मत बाँधो और आओ मुझे इस पतित पुरुषके पकड़नेमें सहायता दो। पलायोन्मुखा सखियोंने हिम्मत बाँधी और वे भी इसके साथ नवाबपर टूट पड़ी। नवाब साहेब प्रेमके भिक्षुक बनकर आये थे, इसलिए उन्होंने इस समय अपना बल प्रगट करनेकी कोई आवश्यकता न समझी, बल्कि कोमलाङ्गिनी रमणियोंके आक्रमणको उन्होंने अपना एक सौभाग्य समझा। असा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मान्या और उसकी सखियोंने उनके हाथ पैरोंको अच्छी तरह एक रस्सीसे कसकर बाँध दिया और फिर उन्हें आसानीसे जमीनपर लुढ़का दिया। नवाब साहबने अपने दरबारके एक हिन्द कविके मुहसे कृष्णचरित्र सुन रक्खा था। आपसे अपनी इस कैदकी अवस्थाका मिलान चौरलीलाके साथ करने लगे। एक बार कृष्णजी किसी ग्वालके घटका दूध दही चोरीसे खा गये। गोपिकाओंने देख लिया। उन्होंने उन्हें पकड़ा और मुश्कें बाँधा कर वे यशोदा माताके यहाँ ले गईं। जिस समय आप अपने कल्पनाराज्यमें मस्त होकर आपको श्रीकृष्ण असामान्याको राधिका और अन्य सखियोंको ब्रजबालायें समझ रहे थे, उसी समय असामान्या बोलीः—"नवाब साहब, अब जरा सावधान होकर आप अपनी अवस्थाका विचार कीजिए। थोड़ी देर पहले जो विस्तृत बंगालदेशका राजा था, वही इस समय एक सामान्य वणिककी स्त्रीके अधिकारमें है। मुकटका बहुमूल्य मणि धूलमें लोट रहा है। लाखों मनुष्योंके जीवनमरणको अपनी मुट्ठीमें रखनेवालेका जीवन एक यःकश्चित् स्त्रीकी मुट्ठीमें? आप जानते हैं कि इस समय मैं आपकी क्या क्या दुर्दशायें करा सकती हूं। अच्छा हो, यदि आप समझ जावें और यह प्रतिज्ञा करके यहाँसे चुपचाप चले जावें कि मैं आगे किसी भी परस्त्रीके साथ ऐसा बुरा व्यवहार न करूँगा। मैं आपको अभी छोड़े देती हूँ। मैं नहीं चाहती हूँ कि बंगालके सर्वशक्तिमान महाराजाका किसी तरह अपमान हो, इसलिए इस प्रकार नम्रताके साथ समझा रही हूँ।"

नवाब—मेरी जान! मेरी प्यारी! तुह्मारे इन्हीं गुणों पर तो मैं फिदा हुआ हूँ। तुम्हारे जैसी हिम्मत, हुकूमत, और समझाने बुझानेकी चतुराई एक नवाबकी बेगममें ही शोभा पाती है। मैं तुम्हारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन कार्रवाईयोंसे बहुत खुश हूँ। परन्तु बस, अब देर मत करो 'आँख आगेकी जुदाई अब सही जाती नहीं!'

असामान्या—नवाब साहब मैं फिर भी कहती हूँ कि आप होशमें आजाईए और अपनी इस बेवशीकी हालत पर विचार कीजिए। इस तरहकी पागलपनकी बातें करना छोड़ दीजिए। मुझे आपकी दशा पर बड़ी ही दया आती है।

नवाब—प्यारी, अगर दया आती है, तो फिर देर क्यों कर रही हो? सचमुच ही मैं (तुम्हारे लिए) पागल हो रहा हूँ, परन्तु इस पागलपनके दूर करनेकी दवाई भी तो तुम्हारे ही पास है।

असामान्या—नवाब, तेरी होनहार अच्छी नहीं है, इसी लिए तू इस बुरी राहसे लौटना नहीं चाहता। तुझे मालूम नहीं है कि अभी थोड़ी ही देरमें मेरे स्वामी तुझे कितना कठोर दण्ड दे सकते हैं। वे बातकी बातमें तेरा सिर धड़से अलग कर देंगे और जमीनमें गाड़कर किसीको पता भी न लगने देंगे कि तेरी क्या दशा हुई।

इस तरह असामान्याने बहुत कुछ समझाया और हर तरहकी धमकियाँ दीं; परन्तु कामान्ध नवाबको चेत न हुआ। आखिर और कोई उपाय न देखकर उस आर्यपत्नीने जाकर अपने पतिको खबर दे दी।

मेहताबचन्द्रके क्रोधका ठिकाना न रहा। वह आते ही अपने कामदार जूतोंसे नवाब साहबकी पूजा करने लगा। जिन अपवित्र ओठोंने हजारों सुशीला आर्याओंकी पवित्रताको अन्यायसे चूस लिया था, वे ही ओष्ठ आज एक वणिककी जूतियोंका चुम्बन कर रहे हैं! इस समय नवाब साहबकी मुखमुद्रा देखने योग्य थी!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३)

सती असामान्याके आग्रहसे सिराजुद्दौला जीता हुआ छोड़ दिया गया। सती समझती थी कि वह अपने कृत कर्म पर पश्चाताप करेगा और आगे सुमार्ग चलने लगेगा। परन्तु फल इससे उलटा हुआ। वह चोट खाये हुए साँपकी तरह बदला लेनेके लिए व्याकुल हो उठा उसने एक बदमाशको बुलाकर आज्ञा दी कि यदि तू महताबचन्द्रको चौराहे पर सबके सामने समाप्त कर देगा और उसके मस्तकको चाँदीके थालमें रखकर उसकी स्त्रीको भेंट कर सकेगा तो मैं तुझपर, बहुत खुश होऊँगा और तुझे मुँहमाँगा इनाम दूंगा।

ऐसा ही हुआ। उक्त भयंकर आज्ञाकी पालना उसी दिन की गई। बदमाश उस निर्दोष धनीके लोहु-लुहान मस्तकको चाँदीके थालमें रखकर उपस्थित हुआ। अपने सामने यह अकल्पित दृश्य देखकर वह भोंचकसी हो रही। क्रोध, शोक, भय, वैर आदि अनेक विकार उसके मुखमण्डल पर एक साथ क्रीडा करने लगे। उक्त विकारोंकी प्रबलताको सती नसँभाल सकी, वह तत्काल ही अचेत होकर गिर पड़ी!

दासियोंने बड़ी कठिनाईसे बहुत देरमें उसे सचेत किया। वह उठ बैठी और बोलने चालने लगी; परन्तु पतिमरणके असह्य शोकसे उसके मस्तक यन्त्र पर बड़ी कड़ी चोट पहुँची। वह पागल हो गई। बेमतलबका बेसिलसिले बकने लगी, जहाँ तहाँ दौड़ने लगी, निर्जन स्थानमें तरह तरहके दृश्य देखकर उनका वर्णन करने लगी, और रोने चिल्लाने लगी। कपड़े लत्तोंका, खानपानका, शरीरका किसी भी बातका उसे भान न रहा। कभी कभी वह इस तरह बोलती है जैसे अपने पतिको बुला रही हो—मना रही हो—'हा हा' खा रही हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कभी कभी कहती है–हाय ! नवाबकी क्या दशा होगी ? भगवान् ! उस पर क्षमा करो--बालजीवों पर क्रोध नहीं करुणा ही शोभा देती है !

अन्यायी नवाबके पापोंका घड़ा भर चुका। सतीके उत्तप्त उच्छ्वास अपना आश्चर्य जनक प्रभाव दिखलाये बिना न रहे। उस पतितात्मा पर अद्भुत-कर्मा विधिकी नजर जा पड़ी। बंगालके जमींदार और जागीरदार उत्तेजित हो उठे। उन्होंने नवाबके दमन करनेके लिए अँगरेजोंसे सहायता माँगी, जिसका परिणाम पलासीका भयंकर युद्ध हुआ। विषयलम्पट नवाब घावोंसे जर्जर होकर भागा परन्तु रास्तेमें पकड़ लिया गया और बड़ी बुरी तरहसे मार डाला गया--और सो भी अपने जाति भाईयोंके ही हाथोंसे।

(४)

इतने दिनोंके बाद आज हम असामान्याको मुर्शिदाबादके कब्रस्तानमें देखते हैं। उसके पास ही नवाबका निर्जीव शरीर लोहुसे लथपथ हुआ पड़ा है। सतीके स्वजन-बन्धु कह रहे हैं–"यह उसी जुल्मी नवाबकी लाश कैसी बुरी हालतमें पड़ी है। दुर्बलोंकी 'आह' कभी व्यर्थ नहीं जाती। देखो, विधिने हमारे वैरका बदला किस तरह चुकाया है !" यह सब देख सुनकर सतीकी मोह निद्रा टूट गई। वह एकाएक जाग उठी और उसकी गई हुई बुद्धि फिर लौट आई। अपने पतिकी हत्याका वैर ले लिया गया, इस बातका खयाल करके मुरझाई हुई गुलाबकी कली फिर एक बार खिल उठी–सतीकी मुखमुद्रा पर परिहासका प्रकाश दिख गया।

इसके बाद सती अपने घर गई, परन्तु थोड़ी ही देरमें–कुछ ही घंटों पीछे दासियोंने रोरा मचाया कि सतीका पता नहीं है ! कहाँ गई और कैसे गई, किसीको कुछ भी मालूम नहीं है। ढूंढ खोज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होने लगी। चारों तरफ नौकर चाकर दौड़ाये, परन्तु कुछ भी फल न हुआ। तब क्या उसने आत्मघात कर लिया? परन्तु अब आत्मघात करनेका तो कोई कारण न रहा था!

(५)

गंगाके किनारे एक अनाथा स्त्री रक्तमें लथपथ हुई पड़ी है। उसके पास ही एक दो तीन दिनका जन्मा हुआ सुकुमार बच्चा पड़ा है। स्त्रीकी उमर १७ वर्षसे अधिक न होगी। रंगरूपसे वह कोई प्रतिष्ठित घरानेकी स्त्री मालूम होती है। परन्तु इस समय बेचारी बड़ी बुरी हालतमें है। उसके होशहवास ठिकाने नहीं हैं। जहाँ तहाँसे उसे भयसूचक शब्द सुन पड़ते हैं। पूर्वकी ओरसे जब वह अपने आप ही सुनती है कि 'पकड़ो, यह पड़ी है' तब बच्चेको उठाकर पश्चिमकी ओर दौड़ने लगती है और घड़ीकमें वहाँसे भी किसी चीज़की आहट सुनती है तब उत्तरकी ओर दौड़ने लगती है। उसके हृदयका भय कल्पनाके द्वारा बाहर प्रत्यक्ष होता है और इस तरह बाहरसे और भीतरसे भयकी दुहरी चपेटें खाकर उसकी दशा बहुत ही शोचनीय हो रही है। पाठक आप जानते हैं कि यह विपत्तिकी मारी हुई स्त्री कौन है? यह नवाब सिराजुद्दौलाकी अतिशय रूपवती और प्रेयसी बेगम है!

बेगमने देखा कि एक युवती स्त्री दूरसे दौड़ती हुई आ रही है। ज्यों ही वह इतने समीप आई कि उसका मुख अच्छी तरह दिखलाई देने लगा, त्यों ही बेगम चिल्लाकर बोल उठी—"अरे, यह तो असामान्या है। अवश्य ही यह अपने पतिका खून करनेवाले नवाबके वैरका बदला लेनेके लिए मुझ कमनसीबके पास आरही है। मेरे ही लिए यह वर्षोंसे गाँव गाँव और वनपर्वतोंमें भटक रही थी। हाय! हाय!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आखिर इसने मुझे पा लिया! अब यह मेरे प्राण लिये बिना न रहेगी। अब मेरी इस बेटीकी रक्षा कौन करेगा?" बेगम अपनी सारी शक्तिको लगाकर किनारेकी ओर दौड़ी और एक मल्लाहको अपनी एक कीमती मुद्रिका देकर उसकी डोंगीमें बैठगई। मल्लाहने उसकी इच्छानुसार डोंगीको दूसरी ओर लेजानेके लिए तेज धारमें छोड़ दी! वायुका वेग पहलेहीसे कुछ अधिक था। इस समय और भी बढ़ गया। गंगा भीषण रूप धारण करने लगी। बातकी बातमें एक छाती फाड़नेवाली चीख सुनाई दी। और डोंगीमेंसे दो सुन्दर शरीर उलटकर गंगामैयाकी गोदमें जापड़े।

असामान्या किनारेपर आ पहुँची थी। इस भयंकर चीखको सुनकर उसका हृदय विदीर्ण होने लगा। वह चिल्लाकर बोली—"अरी निर्दोष बहिन, तूने यह क्या किया? जिस पतिके लिए तूने अपने प्राणोंकी परवा न की और प्रसवकालका समय समीप आ चुकनेपर भी समरांगणका साथ न छोड़ा उसी पतिने जब तेरे साथ दगा किया, तब और किसकी सहायता या उपकारकी तू आशा रख सकती थी? पर बहिन, तेरे अभागी पतिकी दुर्दशाको देखकर मेरे हृदयमें जो दुःख हुआ है मेरी इच्छा थी कि मैं तुझे कह सुनाऊँ। परन्तु तूने मेरी इस इच्छाको तृप्त करनेका अवसर ही न दिया। तेरी सहायता करनेके लिए, तुझे आश्रय देनेके लिए और तुझे आश्वासनके लिए मैंने घर छोड़ा, द्वार छोड़ा, गाँव गाँव और जंगल जंगल घूमना स्वीकार किया, परन्तु कहीं भी पता नहीं लगा। और आज जब तेरी उदास मुखमुद्रा देखनेका संयोग मिला, तब तू गंगाकी गोदमें जा सोई—मैं न तेरे साथ बातचीत कर सकी और न तेरे हृदयमें अपना विश्वास स्थापित कर सकी!" सतीकी आँखोंमेंसे इस समय आँसु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओंकी अविरल धारा बह रही थी। पाठक जानते हैं कि इन आँसुओंका मूल्य कितना है ? नवाबकी सारी सल्तनत उसके एक आँसूके मूल्यके सामने तुच्छ है! बड़े बड़े पुण्यात्माओंके पुण्यका संचय इस सतीके इस समयके एक बुँदके आगे एक कपर्दिकाके तुल्य है! बड़े बड़े फिलासफ़रोंकी फिलासफ़ी शत्रुपत्नीके दुःखसे दुखी होती हुई इस आदर्श आर्याके आसूँके तेजके आगे झख मारती है उधर देखो, हम यहाँ तर्कवितर्कमें ही उलझे हैं कि वह असामान्या सती अपनेको न सँभाल सकी और उस वेगवती नदीमें प्राणोंकी पर्वा न करके कूद पड़ी।

उस समय सतीका साहस और प्रयत्न देखने योग्य था। थोड़ी ही देरमें वह बेगमको उसकी लड़की सहित बड़ी बड़ी कठिनाईयोंका सामना करके डूबती उतराती हुई किसी तरह किनारे तक खींचलाई। जमीनपर आतेही उसके मुँहसे ये आशासूचक शब्द निकल पड़े:—"यदि इसके प्राण दो चार मिनिट ही और ठहर गये, तो मेरी आशा सफल होगी—मैं इसे आश्वासन और आश्रय देकर अवश्य ही सुखी कर सकूँगी।"

परन्तु उसकी यह आशा व्यर्थ हुई। उस जीवनकी परवा न करनेवाले भयंकर साहसका परिणाम 'शून्य'से आगे न बढ़ा। उसको होशमें लानेके सारे प्रयत्न विफल हुए बेगमको आत्मा अपनी निराधार लड़कीको छोड़कर शरीरसे बाहर होगया!

(६)

पूर्व बंगालके एक छोटेसे गाँवमें एक झोपड़ीमेंसे बड़ी ही सुरीली आवाज आ रही है। भीतर जाकर देखते हैं -तो एक आठ वर्षकी सुन्दरी कन्याको एक स्त्री सारंगी बजाना सिखा रही है। स्त्री फटे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हालों है। उसका शरीर बहुत ही कृष हो रहा है। जब कभी वह कन्याके हाथमेंसे सारंगी ले लेती है और एक दो गतें बजाकर फिर उसे दे देती है। बीच बीचमें उस नवनीत कोमला बालिकाको वह अपनी गोदीमें लेकर प्यार करने लगती है। ऐसे अलौकिक दृश्यके देखनेका सौभाग्य स्वर्गमें भी प्राप्त नहीं हो सकता है, इसलिए दयाके देवदूत उस झोंपड़ीके आसपास--एकट्ठे हो रहे हैं और उस कन्याकी सारंगीके सुरमें अपनी दिव्य सारंगियोंका सुर मिलाकर हृदयवेधक ध्वनि उत्पन्न कर रहे हैं। उन देवोंसे यदि पाठक पूछेंगे तो वे उत्तर देंगे कि "वह कन्या नवाब सिराजुद्दौलाकी मातृपितृ-हीन निराधार लड़की है और वह स्त्री उस कन्याके पालनपोषणके लिए ही प्राणोंको धारण कर रखनेवाली सती असामान्या है। इस सती देवीकी सेवामें हर समय उपस्थित रहनेमें हम अपना बड़ा भारी सौभाग्य समझते हैं। विशाल हृदयवाली शत्रुकी सेवाके लिए जीवन दे देनेवाली, शीलरक्षामें गौरव समझनेवाली, यौवन लक्ष्मी और ऐहिक सुखोंकी अपेक्षा परमार्थको बहू मूल्य जाननेवाली सती असा-मान्या वास्तवमें असामान्या महनीया और पूजनीया है।"

—समयधर्म।

गुण सीखो, अवगुण नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि पाश्चात्य लोगोंसे हमें सैकड़ों बातोंकी शिक्षा प्राप्त करना है—विज्ञानादि विषयोंमें इस समय वे हमारे गुरुके आसनपर विराजमान हैं, परन्तु सावधान! भारतवासियो, अपनी गुरुभक्ति इतनी न बढ़ा देना कि उससे गुरुओंके ज्ञान, विज्ञान, उद्यम साहसादि गुणोंके साथ साथ उनके अवगुण भी खिंचे हुए चले आवें और सब तरहसे तुम उन्हींके समान बन जाओ। ये तुम्हारे पूर्वकालके तपोव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नोंमें रहनेवाले ऋषि नहीं हैं जो नखसे शिख तक और बाह्याभ्यन्तरतः सर्वथा अनुकरणीय होते थे। नहीं, ये आजकलके मास्टर साहब हैं जो केवल इसी कामके होते हैं कि उनसे उनकी विद्या सीख ली जाय और उनकी दूसरी बातोंसे कोई संबन्ध न रक्खा जाय। अपने इन गुरुओंकी प्रभुताको, वैभवको, आश्चर्यकारिणी बुद्धि और शक्तिको देखकर चकचौंधा मत जाओ—यह मत समझ बैठो कि ये बाहरसे भीतर तक सब प्रकारसे अनुकरणीय हैं—ज्ञानके समान इनका चरित्र भी निर्मल है। क्योंकि ज्ञान और चारित्र दो चीजें हैं। यह नियम नहीं है कि ज्ञानके साथ चारित्र होता ही है। यह सच है कि इन गुरुओंकी जातिमें भी अनेक पुरुष ऐसे हुए हैं और अब भी हैं जिनका चरित्र बहुत ही ऊँचा और आदरणीय कहा जा सकता है; परन्तु उनपर मुग्ध होकर तुम सारी जातिभरको अपना आदर्श मत मान बैठो। नहीं तो उनके गुणोंके प्राप्त करनेमें तो विलम्ब लगेगा पर अवगुणोंके बोझेसे पहले ही दब जाओगे। यह भी स्मरण रक्खो कि तुम आपको सर्वथा हीन या लघु मत समझो। यद्यपि लघुता या नम्रता प्रगट करना एक सभ्यजनोचित गुण है; परन्तु यह तभी तक गुण है जब तक अभिमान भावको दूर करनेके रूपमें रहता है। पर जिस लघुता ज्ञानसे आत्मा दुर्बल, साहसहीन और अपनी गुप्तशक्तियोंसे अजान हो जाता है—वह कदापि कल्याणकारी नहीं हो सकता है। इस भावको हृदयसे दूर कर देना चाहिए और अपनी अनन्त शक्तियोंपर विश्वास स्थापित करना चाहिए।

जिस जर्मनीको ऐहिक उन्नतिके लिए हमने अपना आदर्श मान रक्खा है, जिसके आश्चर्यजनक आविष्कारों और शिल्पचातुर्यके विपुल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यापारोंको देखकर हम मुग्ध हैं, जानते हो उसके नैतिक चरित्रकी क्या अवस्था है? जर्मनीकी राजधानी बर्लिनमें एक Moalibt Prison नामका एक बड़ा भारी जेलखाना है। उसके अध्यक्ष डा० Finkler Burgh ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है–'जर्मनी देशमें कितने लोगोंको सजा हुई है?' उसमें उन्होंने एक जगह लिखा है– "जर्मन साम्राज्यमें जितने पुरुष हैं उनका छट्टा हिस्सा और जितनी स्त्रियाँ हैं उनका पचीसवाँ हिस्सा जर्मन-दण्डनीतिके किसी न किसी कानूनका भंग करनेसे दण्डित या सजा पाया हुआ है!" और एक जगह लिखा है--"जर्मनीमें इस समय दण्डित (सजायाब) व्यक्तियोंकी संख्या ३८ लाख ६९ हजार है। उनमें ३० लाख ६० हजार पुरुष और ८ लाख ९ हजार स्त्रियाँ हैं। १२ वर्षसे लेकर १८ वर्षकी उमर तकके बालकोंमें ४३ के पीछे एकके हिसाबसे और बालिकाओंमें २१३ के पीछे एकके हिसाबसे दण्डित हैं!" देखिए, कैसा विभीषिकामय व्यापार है!

यूरोपके और और देशोंका भी लगभग यही हाल है। थोड़ेसे उच्चश्रेणीके लोगोंके सिवाय वहाँकी शेष जनता दिनपर दिन पापपङ्कमें डूबती जाती है। फ्रान्सके पुरुष विवाह नहीं करना चाहते, स्त्रियाँ विवाह नहीं करतीं--सन्तानका कष्ट उठाना उन्हें पसन्द नहीं। विलासिताकी हद्द हो गई।

इन सब बातोंपर ध्यान देकर इन गुरुओंसे जो कुछ सीखो, वह अच्छी तरह सोचविचार कर सीखो,–इनके दुर्गुणोंको मत सीख लेना, नहीं तो फिर तुम्हारी दुर्दशाका ठिकाना न रहेगा–इस समय तो तुम्हारे पास भी दुर्गुणोंकी कुछ कमी नहीं है–इतने ही काफी हैं।

गुणग्राही।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मीठी मीठी चुटकियाँ।

१ सेठोंकी गर्भपीड़ा।

इन्दौरके सेठ एक साथ कई संस्थाओंका प्रसव करनेवाले हैं। बेचारे इस समय गर्भकी गहरी तकलीफ सहन कर रहे हैं। प्रसवकाल समीप है। हम चाहते हैं कि उनका यह कष्ट शीघ्र ही सन्तान मुखनिरीक्षणके सुखमें परिणत हो जाय।

२ इतिहासकी मर्यादावृद्धि।

जैन्तासिद्धान्त भास्करके पिछले दो अंकोंके लिए ऐतिहासिक सामग्री एकट्ठी करनेमें, गुप्त बातोंका अनुसन्धान करनेमें और अनेक जटिल समस्याओंको सुलझानेमें उसके सम्पादक महाशयको इतना परिश्रम करना पड़ा है कि अब वे उसे त्रैमासिक रूपमें निकालना अच्छा नहीं समझते हैं—इससे इतिहास जैसे कठिन शास्त्रकी अवज्ञा होती है। उन्होंने निश्चय किया है कि अब वह वार्षिक रूपसे दर्शन दिया करेगा। परन्तु देखते हैं कि पिछले अंकको निकले हुए एक वर्षसे भी अधिक बीत चुका है। आश्चर्य नहीं जो इतिहासकी मर्यादा बढ़ानेके लिए उसका प्रत्येक अंक दो वर्षमें निकालना निश्चय किया गया हो। और कुमार देवेन्द्रप्रसादजीसे जो जैनमित्रके नोटिसमें बड़ी फुर्ती दिखला रहे थे। केफियत तलब की गई हो कि तुमने भास्करके जल्दी निकलनेकी सूचना क्यों प्रकाशित कराई।

३ जैनगजटकी बेजोड़ कविता।

यों तो सभी बातोंमें जैनगजट अपनी सानी नहीं रखता, परन्तु इन दिनों उसने कवितामें बड़ी तरक्की की है। आज कल उसमें कई नामी नामी कवियोंने लिखना प्रारंभ किया है। उसके एक कवि पिछले ३६–३७ अंकमें लिखते हैं:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"बीस वर्ष अब बीते जोय। देखो जैनगजटको सोय॥
देश देशमें उन्नति करी। विद्या धर्म ध्वजा फरहरी॥
महासभा जब खोला आप। शंकट बड़े सहे संताप॥
एक ठौर नहि लिया विश्राम। अब कुछ दिनसे अलिगढ़ धाम॥
श्रीलाल और मिश्रीलाल। सम्पादक हैं देखो हाल॥

इत्यादि। देखिए, कैसी भाव पूर्ण कविता है! न हुए आज कोई भोज जैसे कवियोंके भक्त! कवि पहले दो चरणोंमें कहता है कि जैन-गजटको निकालते हुए बीस वर्ष बीत गये, परन्तु उसे देखिए वह 'सोय' अर्थात् जैसाका तैसा है—जहाँका तहाँ है (बल्कि और भी पीछे हठ गया है)। आगे कवि महासभाके प्रसव करनेके कष्टोंका और सन्तापोंका वर्णन करता हुआ और जगह जगह भटकनेकी कथाका स्मरण कराता हुआ एक नई खबर सुनाता है कि हालमें 'अलीगढ़-धाम'में उसके श्रीलाल और मिश्रीलाल दो सम्पादक हैं! यह बात अभी तक प्रकाशित न हुई थी। कविको हम उसके रचनाचातुर्यके और स्पष्ट वक्तृत्वके विषयमें बधाई देते हैं।

४ पब्लिक सभाओंका शौक।

जैनियोंमें इन दिनों पब्लिक सभाओंका शौक बेतरह बढ़ता जाता है। वे अपने प्रत्येक व्याख्याताको और प्रत्येक उपदेशकको बे-जोड़-लासानी समझते हैं। उनके वचन सुनकर उन्हें जो आनन्दमिश्रित अभिमान होता है उसे वे अपने ही भीतर कैद नहीं रखना चाहते हैं—उसका प्रदर्शन सर्वसाधारणके समक्ष करनेके लिए वे व्याकुल हो उठते हैं। परिणाम यह होता है कि वे किसी अजैन विद्वानको सभा-पति बनाकर पब्लिक सभाओंकी धूम मचा देते हैं। जब व्याख्यान होते हैं तब वे गद्गद होकर सोचते हैं कि इस अपूर्व रसका स्वाद इन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेचारोंको कहाँ मिल सकता था? हमारे मन्दिरके शास्त्रसभारूपी प्यालेके बाहर जिसका कभी एक बूँद भी न जाता था उसका आज हम उदार होकर धारा प्रवाह कर रहे हैं! उस समय वे अपनेको कृतकृत्य समझने लगते हैं और उसी तरहका आनन्दानुभव करने लगते हैं जिस तरह एक बार नारदजीको हुआ था। एक राजकन्याका स्वयंवर था। उसके रूप पर आप मोहित हो गये। आपने श्रीकृष्णजीसे वर मांगा कि मेरा शरीर सुवर्णमय हो जाय। ऐसा ही हुआ। स्वयंवर मंडपमें आप अपने सोनेके शरीरको देखकर फूले न समाते थे और निश्चय कर बैठे थे कि राजकन्या मुझे छोड़कर और कहाँ जायगी? पर दूसरे लोग आपकी ओर देख देखकर अपनी हँसी मुश्किलसे रोक सकते थे। इतनेमें किसी हँसोड़ने महाराजके आगे दर्पण लाके रख दिया! नारदजी अपने मुँहको बन्दरकी शकलका देखकर लज्जा दुःख और ग्लानिके मारे पागल हो गये। जैनियोंके अपने पण्डितोंके पब्लिक-स्पीचानन्दमें मस्त देखकर ता०.....के दैनिक भारतमित्रमें किसी सज्जनने एक लेख रूपी दर्पण उनके आगे रख दिया है। अब वे देखें कि हमारे पब्लिक व्याख्यानोंको जिन पर हम 'बलिहार' हो रहे हैं लोग कैसा समझते हैं। भारतमित्रके लेखककी यह बात सभीके मानने लायक है कि जैनी लोग अपने व्याख्यानोंके फुहारे अपने मन्दिरोंके ही भीतर छोड़ा करें तो अच्छा हो। हम लोग व्यर्थ ही क्यों तंग किये जाते हैं—हम लोगोंके पास ऐसे व्याख्यानोंके सुननेके लिए समय कहाँ है?

५ विचित्र हिसाब।

एक विद्वानने हिसाब लगाया है कि ग्रामों और कस्बोंकी अपेक्षा शहरोंके जैनी, गरीब और मध्यम श्रेणीके लोगोंकी अपेक्षा धनवान्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनी और गुरुके–निगुरियोंकी अपेक्षा गुरुवाले जैनी कुछ अधिक मौटी बुद्धिके होते हैं। मालूम नहीं, यह हिसाब कहाँ तक सच है। पर इसे एक विलायती साहबने प्रकाशित किया है इसलिए लाचार होकर मानना ही चाहिए।

६ भविष्य कथन।

न्यायाचार्य पं० गणेशप्रशादजी साठीकी जन्मकुण्डली देखकर किसी भविष्यद्वक्ताने कहा है कि "आप साठ वर्षकी उमर तक न्याय-शास्त्रोंका अध्ययन करते रहेंगे और उसके बाद यदि जीवेंगे तो फिर, जैन समाजकी सेवा करेंगे।" यह बात आपके 'उपपद' साठीसे भी ठीक मालूम होती है।

—लालबुजक्कड़।

ग्रन्थ–परीक्षा।

(३)

जिनसेन–त्रिवर्णाचार।

(३)

मेरी इच्छा थी कि मैं इस त्रिवर्णाचारके धर्मविरुद्ध कथनोंको विस्तारके साथ प्रगट करूं। परन्तु इस ग्रंथपर कई लम्बे चौड़े लेख हो गये हैं। इससे पहले लेखमें ग्रंथकर्ताकी धूर्तताका दिग्दर्शन कराते हुए धर्म-विरुद्ध कथनोंका भी बहुत कुछ उल्लेख किया जा चुका है। और आगामी **सोमसेन त्रिवर्णाचार**की परीक्षाके समय और भी बहुतसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्मविरुद्ध कथनोंका दिग्दर्शन कराया जायगा। * अधिक लिखना शायद पाठकोंको अरुचिकर हो जाय; इसलिए यहाँपर बहुत संक्षेपके साथ धर्मविरुद्ध कथनोंके कुछ थोड़ेसे नमूने और भी प्रगट किये जाते हैं। जिनसे जैनियोंकी थोड़ी बहुत आँखें खुलें और उन्हें ऐसे जाली ग्रंथोंको अपने भंडारोंसे अलग करनेकी सद्बुद्धि प्राप्त हो:—

१–मिट्टीकी स्तुति और उससे प्रार्थना।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके चौथे पर्वमें, मृत्तिका स्नानके सम्बन्धमें, निम्नलिखित श्लोक दिये हैं:—

" शुद्धतीर्थसमुत्पन्ना मृत्तिका परमाद्भुता।
सर्व पापहरा श्रेष्ठा सर्व मांगल्यदायिनी ॥
सिद्धक्षेत्रेषु संजाता गंगाकुंले समुद्भवा।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम् ॥
अनादि निधना देवी सर्वकल्याणकारिणी।
पुण्यशस्यादिजननी सुखसौभाग्यवर्द्धिनी ॥"

इन श्लोकोंमें गंगा आदि नदियोंके किनारेकी मिट्टीकी स्तुति की गई है। और उसे सर्व पापोंकी हरनेवाली, समस्त मंगलोंके देनेवाली सम्पूर्ण कल्याणोंकी करनेवाली, पुण्यको उपजानेवाली और सुख-सौभाग्यको बढ़ानेवाली, अनादिनिधना देवी बतलाया है। दूसरे श्लोकमें उससे यह प्रार्थना भी की गई है कि **'हे मिट्टी, तू मेरे पूर्वसंचित पापोंको दूर कर दे।'** यह सब कथन जैनधर्मसे असंबद्ध है, और हिन्दू धर्मके ग्रंथोंसे लिया

---

* जिनसेन त्रिवर्णाचारमें सोमसेन त्रिवर्णाचार प्रायः ज्योंका त्यों उठाकर रक्खा हुआ है। और सोमसेन त्रिवर्णाचारकी परीक्षा एक स्वतंत्र लेख द्वारा की जायगी, ऐसी सूचना पहले दी जा चुकी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ मालूम होता है। जैनसिद्धान्तके अनुसार मिट्टी पापोंको हरनेवाली नहीं है और न कोई ऐसी चैतन्यशक्ति है जिससे प्रार्थना की जाय। हिन्दूधर्ममें मिट्टीकी ऐसी प्रतिष्ठा अवश्य है। हिन्दुओंके **वह्निपुराणमें,** स्नानके समय मृत्तिकालेपनका विधान करते हुए मिट्टीसे यही पापोंके हरनेकी प्रार्थना की गई है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोकोंसे प्रगट है:—

"उद्धृतासि वराहेण कृष्णामित बाहुना।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्॥
मृत्तिके जहि मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
त्वया हतेन पापेन ब्रह्मलोकं व्रजाम्यहम्॥" *

बह्निपुराणके इन श्लोकोंमेंसे पहले श्लोकका उत्तरार्ध और जिनसेन त्रिवर्णाचारके, ऊपर उद्धृत किये हुए, दूसरे श्लोकका उत्तरार्ध, ये दोनों एक ही हैं। इससे और भी स्पष्ट है कि यह कथन हिन्दूधर्मसे लिया गया है। जैनियोंके आर्ष ग्रंथोंमें कहीं भी ऐसा कथन नहा है।

२—गोमूत्रसे स्नान।

जिनसेनत्रिवर्णाचारमें, ऊपर उद्धृत किये हुए तीसरे श्लोकके अनन्तर, पंचगव्यसे अर्थात् **गोमूत्रादि**से स्नान करना लिखा है और फिर सूर्यके सामने खड़ा होकर शरीरशुद्धि स्नानका विधान किया है। इसके पश्चात् सिरपर पानीके छींटे देनेके कुछ मंत्र लिखकर संध्या बन्दन करना और उसके बाद सूर्यकी उपासना करनी चाहिए, ऐसा लिखा है यथा:—

---

* देखो **शब्दकल्पद्रुम** कोशमें 'मृत्तिका' शब्द। १ गौका मूत्र, गोबर, घी दूध और दहीको 'पंचगव्य' कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"निमज्योन्मज्याचम्य अमृते अमृतोद्भवे पंचगव्यस्नानं सूर्याभिमुखं स्थित्वा शरीर शुद्धिस्नानं कुर्यात् ।.....संध्याबन्दनानन्तरं सूर्योपस्थापनं कर्तव्यम् ।"

और भी कई स्थानोंपर **पंचगव्य**से स्नान करनेका विधान किया है। एक स्थानपर, इसी पर्वमें, नित्यस्नानके लिए गंगादि नदियोंके किनारे पर पंचगव्यादिके ग्रहण करनेका उपदेश दिया है। यथाः—

"अथातो नित्य स्नानार्थं गंगादि महानदी नदार्णवतीरे पंचगव्यादि कुशतिलाक्षत तीर्थमृत्तिका गहीत्वा....."

यह सब कथन भी हिन्दू धर्मका है। हिन्दूओंके यहाँ ही **गोमय** और **गोमूत्र**का बहुत बड़ा माहात्म्य है। वे इन्हें परम पवित्र मानते हैं और इनसे स्नान करना तो क्या, इनका भक्षण तक करते हैं। उनके **वाराहपुराण**में पंचगव्यके भक्षणसे तत्क्षण जन्मभरके पापोंसे छूटना लिखा है। यथाः—

"गोशकृद्द्विगुणं मूत्रं पयः स्यात्तच्चतुर्गुणम् ।
घृतं तद्द्विगुणं प्रोक्तं पंचगव्ये तथादधि ॥
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पंचगव्यं तु यः पिवेत् ।
यावज्जीवकृतात्पापात् तत्क्षणादेवमुच्यते ॥" *

गोमयको, उनके यहाँ, साक्षात् यमुना और गोमूत्रको नर्मदा तीर्थ वर्णन किया है।* **विष्णुधर्मोत्तर**में गोमूत्रके स्नानसे सब पापोंका नाश होना लिखा है। यथाः—

गोमूत्रेण च यत्स्नानं सर्वाघविनिसूदनम् ।"

इसी प्रकार **सूर्योपस्थापनादिक** ऊपरका सारा कथन हिन्दुओंके अनेक ग्रंथोंमें पाया जाता है। जैनधर्मसे इस कथनका कोई सम्बन्ध नहीं मिलता, न जैनियोंके आर्ष ग्रंथोंमें ऐसा विधि

* देखो **शब्दकल्पद्रुमकोष**में 'पंचगव्यशब्द'। * 'गोमयं यमुनासाक्षात् गोमूत्रं नर्मदा शुभा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विधान पाया जाता है और न जैनियोंकी प्रवृत्ति ही इस रूप देखनेमें आती है।

३–नदियोंका पूजन और स्तवनादिक।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके चौथे पर्वमें, एक बार ही नहीं किन्तु दो बार, गंगादिक नदियोंको तीर्थ देवता और धर्मतीर्थ वर्णन कियां है और साथ ही उन्हें अर्घ चढ़ाकर उनके पूजन करनेका विधान लिखा है। अर्घ चढ़ाते समय नदियोंकी स्तुतिमें जो श्लोक दिये हैं उनमेंसे कुछ श्लोक इस प्रकार हैं।

"पद्महदसमुद्भूता गंगा नाम्नी महानदी।
स्मरणाज्जायते पुण्यं मुक्तिलोकं च गच्छति॥
केसरीद्रहसंभूता रोहितास्या महापगा।
तस्याः स्पर्शन मात्रेण सर्वपापं व्यपोहति॥
महापुंडहदोद्भूता हरिकान्ता महापगा।
सुवर्णार्घप्रदानेन सुखमाप्नोति मानवः॥
रुक्मी–शिखरिसंभूता नारी स्रोतस्विनी शुभा।
स्वर्णस्तेयादिजान्पापान् ध्यानाच्चैव विनश्यति॥
रुक्मिणीगिरिसंभूता नरकान्ताऽसुसेवनात्।
पातकानि प्रणश्यंति तमः सूर्योदये यथा॥
अनेक हृदसंभूता नद्यः सागरसंयुताः।
मुक्तिसौभाग्यदा यश्च सर्वेतीर्थाधिदेवताः॥"

इन श्लोकोंमें लिखा है कि–**गंगा**नदीके स्मरणसे पुण्यकी प्राप्ति होती है और स्मरण करनेवाला मुक्तिलोकको चला जाता है; **रोहितास्या** नदीके स्पर्शनमात्रसे सब पाप दूर हो जाते हैं; हरिकान्ता नदीको सुवर्णार्घ देनेसे सुखकी प्राप्ति होती है; **नारी** नदीके ध्यानसे ही चोरी आदिसे उत्पन्न हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं; **नरकान्ता** नदीकी सेवा करनेसे सर्व पाप इस तरह नाश हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाते हैं जिस तरह कि सूर्यके सन्मुख अंधकार विलय जाता है, और अन्तिम वाक्य यह है कि अनेक द्रहोंसे उत्पन्न होनेवाली और समुद्रमें जा मिलनेवाली अथवा समुद्रसहित **सभी नदियाँ तीर्थ देवता हैं** और सभी मुक्ति तथा सौभाग्यकी देनेवाली हैं। इस प्रकार नदियोंके स्मरण, ध्यान, स्पर्शन या सेवनसे सब सुख सौभाग्य और मुक्तिका मिलना तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश होना वर्णन किया है। इन श्लोकों तथा अर्घोंके चढ़ानेके बाद स्नानका एक **'संकल्प'** दिया है। उसमें भी मन, वचन, कायसे उत्पन्न होनेवाले समस्त पापों और संपूर्ण अरिष्टोंको नाश करनेके लिए तथा सर्व कार्योंकी सिद्धिके निमित्त देव ब्राह्मणके सन्मुख नदी तीर्थमें स्नान करना लिखा है। यथा:—

"……पुण्यतिथौ सर्वारिष्टविनाशनार्थं शांतिक पौष्टिकादि सकल-कर्मसिद्धिसाधनयंत्र-मंत्र-तंत्र-विद्याप्रभावकसिद्धिसाधकसंसिद्धि-निमित्तं कायिकवाचिकमानसिकचतुर्विध पापक्षयार्थं देवब्राह्मणस-न्निधौ देह शुद्धयर्थं सर्व पापक्षयार्थं अमुक तीर्थे स्नानविधिना स्नानमहं करिष्ये ॥"

यह सब कथन जैनमतके बिलकुल विरुद्ध है। जैनधर्ममें न नदि-योंको धर्मतीर्थ माना है और न तीर्थदेवता। जैनसिद्धान्तके अनुसार नदियोंमें स्नान करने या नदियोंका ध्यानादिक करने मात्रसे पापोंका नाश नहीं हो सकता। पापोंका नाश करनेके लिए वहाँ सामायिक प्रतिक्रमण, ध्यान और तपश्चरणादिक कुछ दूसरे ही उपायोंका वर्णन है। वास्तवमें, ये सब बातें हिन्दू धर्मकी हैं। नदियोंमें ऐसी अद्भुत शक्तिकी कल्पना उन्हींके यहाँ की गई है। और इसीलिए हरसाल लाखों हिन्दू भाई दूर दूरसें, अपना बहुतसा द्रव्य खर्च करके, **हरिद्वारादि**

१. अमावस्या तथा श्रावणकी पौर्णमासीको इसी पर्वमें पुण्यतिथि लिखा है और उनमें स्नानकी प्रेरणा की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थोंपर स्नानके लिए जाते हैं। हिन्दुओंके 'आह्निक सूत्रावली' नामके ग्रंथमें हेमाद्रिकृत एक लम्बा चौड़ा स्नानका 'संकल्प' दिया है। इस संकल्पमें बड़ी तफसीलके साथ, गद्यपद्य द्वारा, उन पापोंको दिखलाया है जिनको गंगादिक नदियाँ दूर कर सकती हैं और जिनके दूर करनेकी स्नानके समय उनसे प्रार्थना की जाती है। शायद ही कोई पापका भेद ऐसा रहा हो जिसका नाम इस संकल्पमें न आया हो। पाठकोंके अवलोकनार्थ यहाँ उसका कुछ अंश उद्धृत किया जाता है:—

" रागद्वेषादिजानितं कामक्रोधेन यत्कृतम् ।
हिंसानिद्रादिजं पापं भेददृष्ट्या च यन्मया ॥
परकार्यापहरणं परद्रव्योपजीवनम् ।
ततोऽज्ञानकृतं वापि कायिकं वाचिकं तथा ॥
मानसं त्रिविधं पापं प्रायश्चित्तैरनाशितम् ।
तस्मादशेष पापेभ्यस्त्राहि त्रैलोक्यपावनि ॥ "

"...इत्यादि प्रकीर्णपातकानां एतत्कालपर्यंत संचितानां लघुस्थूलसूक्ष्माणां च निःशेषपरिहारार्थं...देवब्राह्मणसविता-सूर्यनारायणसन्निधौ गंगाभागीरथ्यां अमुक तीर्थे वा प्रवाहाभिमुखं स्नानमहं करिष्ये। "

इससे साफ जाहिर है कि त्रिवर्णाचारका यह सब कथन हिन्दूधर्मका कथन है। हिन्दूधर्मके ग्रंथोंसे, कुछ नामादिकका परिवर्तन करके, लिया गया है। और इसे जबरदस्ती जैनमतकी पोशाक पहनाई गई है। परन्तु जिस तरह पर सिंहकी खाल ओढ़नेसे कोई गीदड सिंह नहीं बन सकता इसी तरह उस स्नानप्रकरणमें कहीं कहीं अर्हन्तादिकका नाम तथा जैनमतकी १४ नदियोंका सूत्रादिक दे देनेसे यह कथन जैनमतका नहीं हो सकता। जैनियोंके प्रसिद्ध आचार्य श्रीसमन्तभद्र स्वामि नदीसमुद्रोंमें, इस प्रकार धर्मबुद्धिसे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्नान करनेका निषेध करते हैं। और उसे साफ तौर पर लोकमूढता बतलाते हैं। यथाः—

"आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते॥"

—रत्नकरण्डश्रावकाचारः।

सिद्धान्तसार ग्रंथमें पृथ्वी, अग्नि, जल और पिप्पलादिकको देवता माननेवालों पर खेद प्रगट किया गया है। यथाः—

"पृथिवीं ज्वलनं तोयं देहलीं पिप्पलादिकान्।
देवतात्वेन मन्यंते येते चिन्त्या विपश्चिता॥ ४४॥"

इसीप्रकार जैन शास्त्रोंमें बहुतसे प्रमाण मौजूद हैं, जो यहाँ अनावश्यक समझकर छोड़े जाते हैं। और जिनसे साफ प्रगट है कि, न नदियाँ धर्मतीर्थ हैं, न तीर्थदेवता और न उनमें स्नान करनेसे पापोंका नाश हो सकता है। इस लिए त्रिवर्णाचारका यह सब कथन जैनमतके विरुद्ध है।

४–पितरादिकोंका तर्पण।

हिन्दुओंके यहाँ, स्नानका अंगस्वरूप, '**तर्पण**' नामका एक नित्यकर्म वर्णन किया है। पितरादिकोंको पानी या तिलोदक (तिलोंके साथ पानी) आदि देकर उनकी तृप्ति की जाती है, इसीका नाम तर्पण है। तर्पणके जलकी देव और पितरगण इच्छा रखते हैं, उसको ग्रहण करते हैं और उससे तृप्त होते हैं। ऐसा उनका सिद्धान्त है। यदि कोई मनुष्य नास्तिक्य भावसे, अर्थात् यह समझकर कि देव पितरोंको जलादिक नहीं पहुँच सकता, तर्पण नहीं करता है तो जलके इच्छुक पितर उसके देहका रुधिर पीते हैं; ऐसा उनके यहाँ **योगि याज्ञवल्क्य**का वचन है। यथाः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"नास्तिक्य भावाद् यश्चापि न तर्पयति वै सुतः।
पिबन्ति देह रुधिरं पितरो वै जलार्थिनः॥"

जैनसेन त्रिवर्णाचार (चतुर्थपर्व) में भी स्नानके बाद 'तर्पण' को नित्य कर्म वर्णन किया है और उसका सब आशय और अभिप्राय प्रायः वही रक्खा है जो हिन्दुओंका सिद्धान्त है। अर्थात् यह प्रगट किया है कि **पितरादिकको पानी या तिलोदकादि देकर उनकी तृप्ति करना चाहिए। तर्पणके जलकी देव पितरगण इच्छा रखते हैं, उसको ग्रहण करते हैं और उससे तृप्त होते हैं।** जैसा कि नीचे लिखे वाक्योंसे प्रगट है:—

"असंस्काराश्च ये केचिज्जलाशाः पितरः सुराः।
तेषां संतोषतृप्त्यर्थं दीयते सलिलं मया॥"

अर्थात्—जो कोई पितर संस्कारविहीन मरे हों, जलकी इच्छा रखते हों और जो कोई देव जलकी इच्छा रखते हों उन सबके संतोष और तृप्तिके लिए मैं पानी देता हूँ अर्थात् तर्पण करता हूँ।

"उपघातापघताभ्यां ये मृता वृद्धबालकाः।
युवानश्चामगर्भाश्च तेषां तोयं ददाम्यहम्॥"

अर्थात्—जो कोई बूढे, बालक, जवान और गर्भस्थ जीव उपघात या अपघातसे मरे हों, मैं उन सबको पानी देता हूँ।

"ये पितृमातृद्वयवंशजाताः, गुरुस्वसृबंधू च बान्धवाश्च।
येलुप्तकर्माश्च सुताश्च दाराः, पशवस्तथालोपगतक्रियाश्च॥
ये पंगवश्चान्धविरूपगर्भाः, आमच्युता ज्ञातिकुले मदीये।
आपोऽशाद्रा (?) द्वयवंशजाताः, मित्राणि शिष्याः सुतसेवकाश्च॥
पशुवृक्षाश्च ये जीवा येच जन्मान्तरंगताः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु स्वधातोयं ददाम्यहम्॥"

इन पद्योंमें उन सबको तर्पण किया गया है, जो पितृवंश या मातृवंशमें उत्पन्न हुए हों, गुरुबंधु या स्वसृ–बंधु हों, लुप्तकर्मा हों, सुता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हों, स्त्रियाँ हों; अपनी जातिकुलके लंगड़े लूले हों, अंधे हों, बिरूप हों, गर्भच्युत हों मित्र हों, शिष्य हों, सुत हों, सेवक हों, पशु हों वृक्ष हों और जो सब जन्मांतरको प्राप्त हो चुके हों। अन्तमें लिखा है कि मैं इन सबको 'स्वधा' शब्द पूर्वक पानी देता हूँ। ये सब तृप्तिको प्राप्त होओ।

"अस्मद्गोत्रे च वंशे ये केचन मम हस्तजलस्य वांछां कुर्वंति
तेभ्यस्तिलोदकेन तृप्यंतां नमः।"

अर्थात्—हमारे गोत्र और वंशमें जो कोई मेरे हाथके पानीकी वांछा करते हों मैं उन सबको तिलोदकसे तृप्त करता हूँ और नमस्कार करता हूँ।

"केचिदस्मत्कुले जाता अपुत्रा व्यंतराः सुराः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पडीनोदकम् ॥ १३ ॥"

अर्थात्—हमारे कुलमेंसे जो कोई पुत्रहीन मनुष्य मर कर व्यंतर जातिके देव हुए हों उन्हें मैं धोती आदि वस्त्रसे निचोड़ा हुआ पानी देता हूँ, वे उसे ग्रहण करें। तर्पणके बाद धोती निचोड़नेका मंत्र है। * इसके बाद 'शरीरके अंगोंपरसे हाथ या वस्त्रसे पानी नहीं पोंछना चाहिए, नहीं तो पुनः स्नान करनेसे शुद्धी होगी' ऐसा विधान करके उसके कारणोंको बतलाते हुए लिखा है कि—

"तिस्रः कोट्योर्धकोटी च यावद्रोमाणि मानुषे।
वसन्ति तावत्तीर्थानि तस्मान्न परिमार्जयेत् ॥ १७ ॥
पिबन्ति शिरसो देवाः पिबन्ति पितरो मुखात्।
मध्याश्च यक्षगंधर्वा अधस्तात्सर्वजन्तवः ॥ १८ ॥

---

* हिन्दुओंके यहां इससे मिलता जुलता मंत्र इस प्रकार है:—
"ये केचास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रजा मृताः।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्र निष्पीडनोदकम् ॥"
—स्मृतिरत्नाकरः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात्—मनुष्यके शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोम हैं उतने ही तीर्थ हैं। दूसरे शरीर पर जो स्नान जल रहता है उसे मस्तक परसे देव, मुखपरसे पितर, शरीरके मध्यभाग परसे यक्ष गंधर्व और नीचेके भाग परसे अन्य सब जन्तु पीते हैं। इस लिए शरीरके अंगोंको पोंछना नहीं चाहिए।

जैनसिद्धान्तसे जिन पाठकोंका कुछ भी परिचय है, वे ऊपरके इस कथनसे भलेप्रकार समझ सकते हैं कि, त्रिवर्णाचारका यह तर्पण-विषयक कथन कितना जैनधर्मके विरुद्ध है। **जैनसिद्धान्तके अनुसार न तो देव पितरगण पानीके लिए भटकते या मारे मारे फिरते हैं और न तर्पणके जलकी इच्छा रखते या उसको पाकर तृप्त और संतुष्ट होते हैं। इसी प्रकार न वे किसीकी धोती आदिका निचोड़ा हुआ पानी ग्रहण करते हैं. और न किसीके शरीर परसे स्नानजलको पीते हैं।** ये सब हिन्दूधर्मकी क्रियायें हैं। हिन्दुओंके यहाँ साफ लिखा है कि, जब कोई मनुष्य स्नानके लिए जाता है, तब प्याससे विह्वल हुए देव और पितरगण पानीकी इच्छासे वायुका रूप धारण करके उसके पीछे पीछे जाते हैं। और यदि वह मनुष्य स्नान करके वस्त्र (धोती आदि) निचोड़ देता है तो वे देव पितर निराश होकर लौट जाते हैं। इसलिये तर्पणके पश्चात् वस्त्र निचोड़ना चाहिए, पहले नहीं। जैसा कि निम्न लिखित वचनसे प्रगट है:—

" स्नानार्थमभिगच्छन्तं देवाः पितृगणैः सह।
बायु भूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः॥
" निराशास्ते निवर्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते।
अतस्तर्पणान्तरमेव वस्त्रं निष्पीडयेत्॥ "

—स्मृतिरत्नाकरे वृद्ध वसिष्ठ"।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु जैनियोंका ऐसा सिद्धान्त नहीं है। जैनियोंके यहाँ मरनेके पश्चात् समस्त संसारी जीव अपने अपने शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार देव, मनुष्य, नरक और तिर्यंच, इन चार गतियोंमेंसे किसी न किसी गतिमें अवश्य चले जाते हैं। और अधिकसे अधिक तीन समय तक 'निराहारक' रह कर तुरन्त दूसरा शरीर धारण कर लेते हैं। इन चारों गतियोंसे अलग पितरोंकी कोई निराली गति नहीं होती, जहाँ वे बिलकुल परावलम्बी हुए असंख्यात या अनन्त कालतक पड़े रहते हों। मनुष्यगतिमें जिस तरह पर वर्तमान मनुष्य किसीके तर्पणजलको पीते नहीं फिरते उसी तरह पर कोई भी पितर किसी भी गतिमें जाकर तर्पणके जलकी इच्छासे विह्वल हुआ उसके पीछे मारा मारा नहीं फिरता। प्रत्येक गतिमें जीवोंका आहारविहार उनकी उस गति, स्थिति और देशकालके अनुसार होता है। इस तरह पर त्रिवर्णाचारका यह सब कथन जैनधर्मके विरुद्ध है और कदापि जैनियोंके आदरणीय नहीं हो सकता। अस्तु। तर्पणका यह सम्पूर्ण विषय बहुत लम्बा चौड़ा है। त्रिवर्णाचारका कर्ता इस धर्मविरुद्ध तर्पणको करते करते बहुत दूर निकल गया है। उसने तीर्थंकरों, केवलियों, गणधरों, ऋषियों, भवनवासि, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों, काली आदि देवियों, १४ कुलकरों, कुलकरोंकी स्त्रियों, तिर्थंकरोंके माता-पिताओं, चार पीढीतक स्वमातापितादिको, तीर्थंकरोंको आहार देनेवालों, तीर्थंकरोंके वंशों, १२ चक्रवर्तियों, ९ नारायणों, ९ प्रतिनारायणों, ९ बलिभद्रों, ९ नारदों, महादेवादि ११ रुद्रों, इत्यादिको, अलग अलग नाम लेकर, पानी दिया है; इतना ही नहीं, बल्कि नदियों,

१. ऋषियोंके तर्पणमें हिन्दुओंकी तरह '**पुराणाचार्य**' का भी तर्पण किया है। और हिन्दुओंके '**इतराचार्य**' के स्थानमें '**नवीनाचार्य**' का तर्पण किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्रों, जंगलों, पहाड़ों, नगरों, द्वीपों, वेदों, वेदांगों, कालों, महिनों, ऋतुओं और वृक्षोंको भी, उनके अलग नामोंका उच्चारण करके, पानी दिया है। हिन्दुओंके यहाँ भी ऐसा ही होता है। अर्थात् वे नारायण और रुद्रादि देवोंके साथ नदी समुद्रों आदिको भी देवता मानते हैं। * उनके यहाँ देवताओंका कुछ ठिकाना नहीं है। वे नदी समुद्रों आदिको भी देवता मानते हैं। परन्तु मालूम नहीं कि, त्रिवर्णाचारके कर्ताने इन नद्यादिकोंको देवता समझा है, ऋषि समझा है या पितर समझा है। अथवा कुछ भी न समझकर **'नकलमें अकलको दखल नहीं'** इस लोकोक्ति पर अमल किया है। कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि, त्रिवर्णाचारके कर्ताने हिन्दूधर्मके इस तर्पण-सिद्धान्तको पसंद किया है और उसे जैनियोंमें, जैन तीर्थंकरादिकोंके नामादिका लालचरूपी रंग देकर, चलाना चाहा है। परन्तु आखिर मुलम्मा मुलम्मा ही होता है। एक एक दिन असलियत खुले विना नहीं रहती।

५–पितरादिकोंका श्राद्ध।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके चौथे पर्वमें तर्पणकी तरह **'श्राद्ध'** का भी एक विषय दिया है और इसे भी हिन्दूधर्मसे उधारा लेकर रक्खा है। पितरोंका उद्देश्य करके दिया हुआ अन्नादिक पितरोंके पास पहुँच जाता है, ऐसी श्रद्धासे शास्त्रोक्त विधिके साथ जो अन्नादिक दिया

---

* जैसा कि **कात्यायन परिशिष्ट सूत्र**के निम्न लिखित एक अंशसे प्रगट है:—

"ततस्तर्पयेद्ब्रह्माणं पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं देवाँश्छंदांसि वेदानृषीन्पुराणाचार्यान्गन्धर्वानितराचार्यान्संवत्सरं सावयवं देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान्सागरान्पर्वतान्सरितो मनुष्यान्यक्षान् रक्षांसि पिशाचान्सुपर्णान् भूतानि पशून्वनस्पतीनोषधीर्भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यतामित्योंकार पूर्वम्।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है उसका नाम श्राद्ध है। * हिन्दुओंके यहाँ तर्पण और श्राद्ध, ये दोनों विषय करीब करीब एक ही सिद्धान्त पर अवस्थित हैं। दोनोंको 'पितृयज्ञ' कहते हैं। भेद सिर्फ इतना है कि तर्पणमें अंजलिसे जल छोड़ा जाता है किसी ब्राह्मणादिकको पिलाया नहीं जाता। देव पितरगण उसे सीधा ग्रहण कर लेते हैं और तृप्त हो जाते हैं। परन्तु श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन खिलाया जाता है—या सूखा अन्नादिक दिया जाता है। और जिसप्रकार 'लैटर बक्स' में डाली हुई चिट्ठी दूरदेशान्तरोंमें पहुँच जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मणोंके पेटमेंसे वह भोजन देव पितरोंके पास पहुँचकर उनकी तृप्ति कर देता है। इसके सिवाय कुछ क्रियाकांडका भी भेद है। त्रिवर्णाचारके कर्ताने जब देव पितरोंको पानी देकर उनका विस्तारके साथ तर्पण किया है तब वह श्राद्धको कैसे छोड़ सकता था?—पितरोंकी अधूरी तृप्ति उसे कब इष्ट हो सकती थी?—इसलिए उसने श्राद्धको भी अपनाया है। और हिन्दुओंका श्राद्धविषयक प्रायः सभी क्रियाकांड त्रिवर्णाचारमें दिया है। जैसा कि-श्राद्धके नित्य, नैमित्तिक, दैविक, एकतंत्र, प्रार्वण अन्वष्टका, वृद्धि, क्षयाह, अपर-पक्ष, कन्यागत, गजच्छाया और महालयादि भेदोंका कथन करना; श्राद्धके अवसर पर ब्राह्मणोंका पूजन करना; नियुक्त ब्राह्मणोंसे 'स्वागतं,' 'सुखागतं' इत्यादि निर्दिष्ट प्रश्नोत्तरोंका किया जाना; तिल, कुश और जल हाथमें लेकर मासादिक तथा

* श्राद्धः—शास्त्रोक्त विधानेन पितृकर्म इत्यमरः। पित्रुद्देश्यक श्रद्धयान्नादि दानम्। 'श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते' इति पुलस्त्य वचनात् श्रद्धया अन्नादेर्दानं श्राद्धं इति वैदिक प्रयोगाधीन यौगिकम्। इति श्राद्धतत्त्वं। अपि च सम्बोधन पदोपनीतान् पित्रादीन् चतुर्थ्यन्तपदेनोद्दिश्यहविस्त्यागः श्राद्धम्।

—शब्दकल्पद्रुमः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोत्रादिकके उच्चारणपूर्वक 'अद्य मासोत्तमेमासे....' इत्यादि संकल्प बोलना; अन्वष्टकादि खास खास श्राद्धोंके सिवाय अन्य श्राद्धोंमें पितादिकका सपत्नीक श्राद्ध करना; अन्वष्टकादि श्राद्धोंमें माताका श्राद्ध अलग करना; नित्य श्राद्धोंमें आवाहनादि नहीं करना; नित्य श्राद्धको छोड़कर 'विश्वेदेवों' का भी श्राद्ध करना; विश्वेदेवोंके ब्राह्मणको पितरोंके ब्राह्मणोंसे अलग बिठलाना; देवपात्रों और पितृपात्रोंको अलग अलग रखना; रक्षाका विधान करना और तिल बखेरना; नियुक्त ब्राह्मणोंकी इजाजतसे विश्वेदेवों तथा पिता, पितामहादिक (तीन पीढी तक) पितरोंका अलग अलग आवाहन करना; विश्वेदेवों तथा पितरोंको अलग अलग आसन देकर बिठलाना और उनका अलग अलग पूजन करना; गंगा सिंधु सरस्वतीको अर्घ देना; ब्राह्मणोंके हाथ धुलाना और उनके आगे भोजनके पात्र रखना; ब्राह्मणोंकी आज्ञासे अग्नौकरण करना; जौं (यव) बखेरना; प्रजापतिको अर्घदेना; अमुक देव या पितरको यह भोजन मिले, ऐसे आशयका मंत्र बोलकर नियुक्त ब्राह्मणोंको तृप्ति पर्यंत भोजन कराना; तृप्तिका प्रश्नोत्तर किया जाना; ब्राह्मणोंसे शेषान्नको इष्टोंके साथ भोजन करनेकी इजाजत लेना; भूमिको लीपकर पिंड देना; आचमन और प्राणायामका किया जाना; जप करना; कभी जनेऊको दाहने कंधे पर और कभी बाएँ कंधे पर डालना, जिसको 'अपसव्य' और 'सव्य' होना कहते हैं; आशीर्वादका दिया जाना; ब्राह्मणोंसे 'स्वधा' शब्द कहलाना, और उनको दक्षिणा देकर विदा करना; इत्यादि—

ऊपरके इस त्रियाकांडसे, पाठकोंको यह तो भले प्रकार मालूम हो जायगा कि इस त्रिवर्णाचारमें हिन्दूधर्मकी कहाँ तक नकल की गई है। परन्तु इतना और समझ लेना चाहिए कि इस ग्रंथमें हिन्दूधर्मके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आशयको लेकर केवल क्रियाओंहीकी नकल नहीं की गई बल्कि उन शब्दोंकी भी अधिकतर नकल की गई है जिन शब्दोंमें ये क्रियायें हिन्दूधर्मके ग्रंथोंमें पाई जाती हैं। और तो क्या, बहुतसे वैदिक मंत्र भी ज्योंके त्यों हिन्दु ग्रंथोंसे उठाकर इसमें रक्खे गये हैं। नीचे जिनसेन त्रिवर्णाचारसे, उदाहरणके तौर पर, कुछ वाक्य और मंत्र उद्धृत किये जाते हैं जिनसे श्राद्धका आशय, उद्देश, देवपितरोंकी तृप्ति और नकल वगैरहका हाल और भी पाठकों पर विदित हो जायगा:—

" नित्यश्राद्धेऽर्थं गंधाद्यैर्द्विजानर्चेत्स्वशक्तितः।
सर्वान्पितृगणान्सम्यक् तथैवोद्दिश्य योजयेत् ॥ १ ॥ "

इस श्लोकमें नित्य श्राद्धके समय ब्राह्मणोंका पूजन करना और सर्व पितरोंको उद्देश्य करके श्राद्ध करना लिखा है। इसी प्रकार दूसरे स्थानों पर भी '**ब्राह्मणं गंधपुष्पाद्यैः समर्चयेत्,**' '**अस्मत्पितुर्निमित्तं नित्यश्राद्धमहं करिष्ये,**' इत्यादि वचन दिये हैं।

" नावाहनं स्वधाकारः पिंडाग्नौकरणादिकम्।
ब्रह्मचर्यादि नियमो विश्वेदेवास्तथैव च ॥ २ ॥ "

इस श्लोकमें उन कर्मोंका उल्लेख किया है जो नित्य श्राद्धमें वर्जित हैं। अर्थात् यह लिखा है कि नित्य श्राद्धमें आवाहन, स्वधाकार, पिंड-दान, अग्नौकरणादिक, ब्रह्मचर्यादिका नियम और विश्वेदेवोंका श्राद्ध नहीं किया जाता। यह श्लोक हिन्दूधर्मसे लिया गया है। हिन्दुओंके '**आह्निक सूत्रावलि**' ग्रंथमें इसे **व्यास**जीका वचन लिखा है।

" दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ५ ॥ "

---

१ मैं अपने पिताके निमित्त नित्य श्राद्ध करता हूँ। २ मनुस्मृतिमें '**दद्यात्**' के स्थानमें '**कुर्यात्**' लिखा है। परन्तु **मिताक्षरादि** ग्रंथोंमें '**दद्यात्**' के साथ ही इसका उल्लेख किया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात्—पितरोंकी प्रीति प्राप्त करनेके अभिलाषीको चाहिए कि वह अन्नादिक-या जलसे अथवा दूध और मूल फलोंसे नित्य श्राद्ध करे। इससे प्रगट है कि पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया जाता है और पितरगण उससे खुश होते हैं। यह श्लोक **मनुस्मृतिके** तीसरे अध्यायसे उठाकर रक्खा गया है और इसका नम्बर वहाँ ८२ है।

" अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये।
अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा ॥ ६ ॥ "
आयुद्धृत्य यथाशक्ति किंचिदन्नं यथाविधि।
पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥ ७ ॥
पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधावाच्यं च कारयेत् ॥ ८ ॥ (पूर्वार्ध)"

ये सब वाक्य **कात्यायन स्मृति** (१३ वें खंड) के हैं। वहींसे उठाकर त्रिवर्णाचारमें रक्खे गये हैं। इनमें लिखा है कि यदि कोई दूसरा ब्राह्मण भोजन करनेवाला न मिले अथवा भोजनकी सामग्री अधिक न हो, तो पितृ यज्ञकी सिद्धिके लिए कमसे कम एक ही ब्राह्मणको भोजन करादेना चाहिए। और यदि इतना भी न हो सके, तो कुछ थोड़ासा अन्न पितरादिकोंके वास्ते ब्राह्मणको जरूर देदेना चाहिए पितरोंके लिए जो दिया जाय उसके साथमें '**पितृभ्यः इदं स्वधा,**' यह मंत्र बोलना चाहिए।

" अन्वष्टकासु वृद्धौच सिद्धक्षेत्रे क्षयेऽहनि।
मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह ॥ "

अर्थात्—कन्वष्टका, वृद्धि, सिद्धक्षेत्र, क्षयाह, इन श्राद्धोंमें माताका श्राद्ध अलग करना चाहिए। दूसरे अवसरों पर पतिके संग कर। यह श्लोक भी हिन्दूधर्मका है और '**मिताक्षरा**' में इसी प्रकारसे दिया

१ कात्यायनस्मृतिमें 'स्वधाकारमुदीरयेत्' ऐसा लिखा है? -वह्निपुराणः।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। सिर्फ दूसरे चरणमें कुछ थोड़ासा भेद है। मिताक्षरामें 'क्षयेऽहनि' से पूर्व 'गयायां च' ऐसा पद दिया है। और इसके द्वारा गयाजीमें जो श्राद्ध किया जाय उसको सूचित किया है। त्रिवर्णाचारमें इसको बदलकर इसकी जगह 'सिद्धक्षेत्रे' बनाया गया है।

" आगच्छन्तु महा भागा विश्वेदेवा महाबलाः।
ये यत्र योजिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ "

हिन्दुओंके यहाँ, *'विश्वेदेवा' नामके कुछ देवता हैं जिनकी संख्या १० है। ऊपरका यह श्लोक उन्हींके आवाहनका मंत्र है। मिताक्षरामें इसे विश्वेदेवोंके आवाहनका स्मार्त मंत्र लिखा है। हिन्दुओंके गारुडादि ग्रंथोंमें भी यह मंत्र पाया जाता है। जिनसेन त्रिवर्णाचारमें भी यह मंत्र विश्वेदेवोंके आवाहनमें प्रयुक्त किया गया है। परन्तु जरासे परिवर्तनके साथ। अर्थात् त्रिवर्णाचारमें 'महाबलाः' के स्थानमें 'चतुर्दश' शब्द दिया है। बाकी मंत्र बदस्तूर रक्खा है। त्रिवर्णाचारके कर्ताने जैनियोंके १४ कुलकरोंको 'विश्वेदेवा' वर्णन किया है। इसीलिए उसका यह परिवर्तन मालूम होता है। परन्तु जैनियोंके आर्ष ग्रंथोंमें कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं पाया जाता।

"आर्त्तरौद्रमृता येन ज्ञातिनां कुलभूषणाः।
उच्छिष्टभागंगृह्णन्तु दर्भेषुविकिराशनम् ॥
अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्तायान्तु परां गतिम् ॥"

अर्थात्—जो कोई आर्त या रौद्र परिणामोंके साथ मरे हों, जातियोंके भूषण न हों अर्थात् क्षुद्र मनुष्य हों वे सब दर्भके ऊपर डाले

* यथाः— " ऋतुर्दक्षोवसुः सत्यः कामः कालस्तथाध्वनिः (धृतिः।)
रोचकश्चार्द्रवाश्चैव तथा चान्ये पुरूरवाः ॥
विश्वेदेवाभवन्त्येते दशसर्वत्र पूजिताः।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए भोजनके इस उच्छिष्ट भागको ग्रहण करो। और जो मेरे कुलमें अग्निसे दग्ध हुए हों अथवा जिनको अग्निका दाह प्राप्त न हुआ हो वे सब पृथ्वीपर डाले हुए इस भोजनसे तृप्त होओ और तृप्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त होओ। ये दोनों श्लोक पिंड देते समयके मंत्र हैं। दूसरा श्लोक हिन्दुओंके **मिताक्षरा** और **गारुडादि** ग्रंथोंमें भी पाया जाता है। और पहले श्लोकका आशय **मनुस्मृति** तीसरे अध्यायके श्लोक नं० २४५–२४६ से मिलता जुलता है। त्रिवर्णाचारके इन श्लोकोंसे साफ जाहिर है कि पितरगण पिंड ग्रहण करते हैं और उसे पाकर तृप्त होते तथा उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं।

एक स्थानपर त्रिवर्णाचारके इसी प्रकरणमें मोदक और विष्टरका पूजन करके और प्रत्येक-मोदकादिक पर '**नमः पितृभ्यः**' इस मंत्रके उच्चारण पूर्वक डोरी बाँधकर उन्हें पितरोंके लिए ब्राह्मणोंको देना लिखा है। और इस मोदकादिके प्रदानसे पितरोंकी अक्षय तृप्ति वर्णन की है और उनका स्वर्गवास होना लिखा है। यथाः—

"……मातृणां मातामहानां चाक्षया तृप्तिरस्तु।"
अनेन मोदक प्रदानेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपाणां
आचार्याणां तृप्तिरस्तु। 'स्वर्गवासोऽस्तु।"

श्राद्धके अन्तमें आशीर्वाद देते हुए लिखा है कि:—

"आयुर्विपुलतां यातु कर्णे यातु महत् यशः॥
प्रयच्छन्तु तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥"

अर्थात्—आयुकी वृद्धि हो, महत् यश फैले और मनुष्योंके पितरगण प्रसन्न होकर श्राद्ध करनेवालोंको राज्य देवें। इस कथनसे त्रिवर्णाचारने श्राद्धद्वारा पितरोंका प्रसन्न होना प्रगट किया है। इस श्लोकका उत्तरार्ध और याज्ञवल्क्य स्मृतिमें दिये हुए श्राद्ध प्रकरणके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तिम श्लोकका उत्तरार्ध दोनों एक हैं। सिर्फ '**प्रयच्छन्ति**' की जगह यहाँ '**प्रयच्छन्तु**' बनाया गया है।

"(१) ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य इदमासनं स्वाहा. (२) ॐ अमुकगोत्रेभ्यः पितापितामहप्रपितामहेभ्यः सपत्नीकेभ्य इदमासनं स्वधा. (३) ॐ विश्वेदेवानामावाहयिष्ये, (४) ॐ आवाहय. (५) ॐ अग्नौकरणमहं करिष्ये (६) ॐ कुरुष्व. (७) ॐ अग्नयेकव्यवाहनाय स्वाहा. (८) ॐ सोमायपितृमतेस्वाहा. (९) आपोहीष्टा मयो भुवः (१०) ॐ पृथिवीते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा. (११) तिलोसि सोमदेवत्यो गोसवोदेवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄँल्लोकान्यृणाहि नः स्वाहा।"

ये सब हिन्दुओंके मंत्र हैं। और **गारुड** या **मिताक्षरा**दि हिन्दू ग्रंथोंसे उठाकर रक्खे गये है। इस प्रकार यह श्राद्धका सारा प्रकरण हिंदूधर्मसे लिया गया है। इतने पर भी त्रिवर्णाचारका कर्ता लिखता है कि मैं '**उपासकाध्ययन**' में कही हुई श्राद्धकी विधिको वर्णन करता हूँ। यथाः—

"गणाधीशं श्रुतस्कंधमपि नत्वा त्रिशुद्धितः।
श्रीमच्छ्राद्धविधिं वक्ष्ये श्रावकाध्ययनोदिताम्॥"

यह सब लोगोंको धोखा दिया गया है। वास्तवमें, तर्पणकी तरह, श्राद्धका यह सब कथन जैनधर्मके विरुद्ध है। जैनधर्मसे इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। जैन सिद्धान्तके अनुसार ब्राह्मणोंको खिलाया हुआ भोजन या दिया हुआ अन्नादिक कदापि पितरोंके पास नहीं पहुँच सकता। और न ऐसा करनेसे देव पितरोंकी कोई तृप्ति होती है।

६–सुपारी खानेकी सजा।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके ९ वें पर्वमें लिखा है कि, जो कोई मनुष्य पानको मुखमें न रखकर, अर्थात् पानसे अलग, सुपारी खाता है वह सात जन्म तक दरिद्री होता हैं और अन्त समयमें (मरते वक्त) उनको जिनेंद्र देवका स्मरण नहीं होता। यथाः—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

" अनिधाय मुखे पर्ण पूगं खादति यो नरः ।
सप्तजन्मदरिद्रः स्यादन्ते नैव स्मरेज्जिनम् ॥ २२५ ॥ "

पाठक गण देखा, कैसा धार्मिक न्याय है ! कहाँ तो अपराध और कहाँ इतनी सख्तसजा ! क्या जैनियोंकी कर्म फिलासोफी और जैनधर्मसे इसका कुछ सम्बन्ध हो सकता है ? कदापि नहीं । यह कथन हिन्दूधर्मके किसी ग्रंथसे लिया गया है । हिन्दुओंके स्मृतिरत्नाकर ग्रंथमें यह श्लोक बिलकुल ज्योंका त्यों पाया जाता है । सिर्फ अन्तिम चरणका भेद है । वहाँ अन्तिम चरण **' नरकेषु निमज्जति '** (नरकोंमें पड़ता है), इस प्रकार दिया है । त्रिवर्णाचारमें इसी अन्तिम चरणको बदलकर उसके स्थानमें **' अन्ते नैव स्मरेज्जिनम् '** ऐसा बनाया गया है । इस परिवर्तनसे इतना जरूर हुआ है कि कुछ सजा कम होगई है । नहीं तो बेचारेको, सात जन्म तक दरिद्री रहनेके सिवाय, नरकमें और जाना पड़ता ।

७–ऋतुकालमें भोग न करनेवाली स्त्रीकी गति ।

जिनसेन त्रिवर्णाचारके १२ वें पर्वमें, गर्भाधानका वर्णन करते हुए, लिखा है कि:–

" ऋतुस्नाता तु या नारी पतिं नैवोपविन्दति ।
शुनी वृकी शृगाली स्याच्छूकरी गर्दभी च सा ॥ २७ ॥ "

अर्थात्–ऋतुकालमें, स्नानके पश्चात्, जो स्त्री अपने पतिसे संभोग नहीं करती है वह मरकर कुत्ती, भेडिनी, गीदड़ी सूअरी और गधी होती है। यह कथन बिलकुल जैनधर्मके विरुद्ध है । और इसने जैनियोंकी सारी कर्मफिलासोफीको उठाकर ताकमें रखदिया है । इसलिये कदापि जैनाचार्योंका नहीं हो सकता । यह श्लोक भी, ज्योंका त्यों या कुछ परिवर्तनके साथ, हिन्दूधर्मके किसी ग्रंथसे लिया गया मालूम होता है। क्यों कि हिन्दूधर्मके ग्रंथोंमें ही इस प्रकारकी आज्ञायें प्रचुरताके साथ पाई जाती हैं । उनके यहाँ जब ऋतुस्नाताके साथ भोग न करने पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषको नरकमें पहुँचाया है, तब क्या ऋतुस्नाता होकर भोग न करने पर स्त्रीको तिर्यंचगतिमें न भेजा होगा; जरूर भेजा होगा। पराशरजीने तो ऐसी स्त्रीको भी सीधा नरकमें ही भेजा है। और साथ ही बारबार विधवा होनेका भी फतवा (धर्मादेश) दे दिया है। यथाः—

" ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति ।
सामृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ ४-१४ ॥ "
—पराशर स्मृतिः ।

इसी प्रकार हिन्दूधर्मके बहुतसे फुटकर श्लोक इस त्रिवर्णाचारमें पाये जाते हैं, जो या तो ज्यों के त्यों या और कुछ परिवर्तनके साथ रक्खे गये हैं।

इस तरह पर धर्मविरुद्ध कथनोंके ये कुछ थोडेसे नमूने हैं। और इनके साथ ही इस ग्रंथकी परीक्षा भी समाप्त की जाती है।

अन्तमें जैन विद्वानोंसे मेरा सविनय निवेदन है कि यदि उनमेंसे कोई इस त्रिवर्णाचारको आर्ष ग्रंथ या जैन ग्रंथ समझते हों और उनके पास मेरे लेखोंके विपक्षमें कोई प्रमाण मौजूद हों तो वे कृपाकर अवश्य उन्हें शीघ्र ही प्रकाशित करें। अन्यथा उनका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे ऐसे ग्रंथोंके विपक्षमें अपनी सम्मतियाँ प्रगट करके उनका निषेध करें, जिससे आगामीको इन जाली और बनावटी ग्रंथोंके कारण जैनधर्म और जैन समाज पर कुठाराघात न हो सके। इत्यलम्।

देवबन्द, जि. सहारनपुर,
ता० १५-८-१४

समाजसेवक—
जुगलकिशोर मुख्तार।

निवेदन।

सम्पादक महाशयके अन्यत्र चले जानेके कारण प्रूफ संशोधनमें गलतियाँ रहना संभव है। पाठक क्षमा करें।

व्यवस्थापक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत्–यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज" के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। जनवरी १९१३ से इसमें विशेष उन्नति की गई है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डा० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ।)॥ है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र–राजा साहबके चित्र संसारभरमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

चित्रमय जापान–घर बैठे जापानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टिसौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, नृत्य, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपर पर छपी है। मूल्य एक रुपया।

सचित्र अक्षरबोध–छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश–ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि–यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखडी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ीन चित्र—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रामपंचायतन, भरतभेट, ावपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपी ाहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास, गजेंद्रमोक्ष, हरिहर ार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र। आकार ७ × ५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८ × १० मूल्य प्रति संख्या एक आना।

लिथोके बढियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र।) और चारों मिलकर ॥), नानक पंथके दस गुरू, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६ × २० मूल्य प्रति चित्र।) आने।

अन्य सामान्य—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा, बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडरगार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरों आदिके चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे, ड्राईंगका सामान, भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी

पच्चीस रुपयेका पुरस्कार।

कविवर वृन्दावनजीके 'प्रवचनसार 'के कठिन शब्दोंका अर्थ और उसके सब पद्योंका भावार्थ जो महाशय लिखेंगे उनमेंसे सर्वश्रेष्ठ लेखकको २५) का पुरस्कार दिया जायगा। लिखनेवालोंको हमारे पास सिर्फ एक कापी भेजनी होगी, हम उसे छपावेंगें नहीं। उसको प्रकाशित करके लाभ उठानेका लेखकको अधिकार होगा।

माणिकचन्द मुंसिफ,
मुंगेली (बिलासपूर)

[इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख १२–९–१४।]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजी कृत

नाटक समयसार।

श्रीयुत नाना रामचन्द्र नाग जैन ब्राह्मण कृत
भाषा वचनिका सहित।

निर्णयसागर प्रेसमें
खुले पत्रोंमें छपा है।
अध्यात्मप्रेमियोंको शीघ्र मँगा लेना चाहिए।
मूल्य २॥) ढाई रुपया।

दिगम्बर जैन डिरेक्टरी

छपकर तैयार है शीघ्र मँगाइए। मूल्य आठ रुपया। लगभग १५ हजार रुपयोंके खर्चसे यह बड़ी भारी पुस्तक तैयार हुई है। सारे हिन्दुस्थानमें कहाँ, कहाँ, कितने, किस जातिके जैनी बसते हैं, क्या धंदा करते हैं, मन्दिर कितने हैं, मुखिया कौन कौन हैं, किस गाँवका कौनसा डाँकखाना, स्टेशन आदि है, दिगम्बरियोंकी कुल संख्या कितनी है, कौन कौन जातिके कितने कितने घर हैं सिद्धक्षेत्र आदि कहाँ कहाँ हैं, उनका और बड़े बड़े शहरों तीर्थ स्थानोंका प्राचीन इतिहास है, इत्यादि सैकड़ों जानने योग्य बातोंका इसमें संग्रह है। व्यापारियों और नोटिस बाँटनेवाले लोगोंके लिए तो बड़े ही कामकी चीज है।

मिलनेका पता:—

जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय,
पो० गिरगांव-बम्बई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नई छपी हुई पुस्तकें।

श्रीपालचरित—पहली बार जो श्रीपालचरित छपा था, वह चौपाईबंध था–उसे सब लोग सहज ही न समझ सकते थे, इस कारण अबकी बार मास्टर दीपचन्दजीकी बनाई सरल बोलचालकी भाषामें छपाया गया है। पक्की जिल्द बँधी है। मूल्य १=)

जम्बूस्वामीचरित—यह भी इसी तरह बोलचालकी भाषामें छपा है। मूल्य।)

जैनार्णव—इसके लिए बड़ा नोटिस जो दूसरी अगह छपा हुआ है उसे देखिए। इसमें १०० पुस्तकें हैं। मू० १)

हिन्दी भक्तामर—भक्तामर स्तोत्रका खड़ी बोलिमें पं. गिरिधरशर्माकृत अनुवाद। मू० सवा आना।

जैनगीतावली—बुन्देलखण्डकी स्त्रियोंके लिए ब्याह शादियोंमें गानेलायक गीतोंका संग्रह। मू० ।=)

छहढाला अर्थसहित—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कृत। अबकी बार निर्णयसागर प्रेसमें खूबसूरतीके साथ छपा है। मूल्य लागतके लगभग; ढाई आना।

मितव्ययिता—(किफायतसारी)—एक अंग्रेजी ग्रंथके आधारसे बाबू दयाचन्दजी जैनी बी. ए. ने लिखी है। प्रत्येक घरके स्त्री पुरुषों बालक बालिओंको इसे पढना चाहिए। फिजूलखर्ची और बुरी आदतें छुड़ानेके लिए यह गुरुका काम देगी। मूल्य चौदह आने।

विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य—एक नामी विद्वानका लिखा हुआ निबन्ध। प्रत्येक विद्यार्थीको पढना चाहिए। मू० एक आना।

सच्ची मनोहर कहानियां—भारतवर्षके प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीर और वीरांगनाओंकी हृदयको फड़का देनेवाली ऐतिहासिक कहानियां। सरल, सबके पढने योग्य, जैनसमाजमें प्रचार करनेके लिए खास तौरसे मँगाई गई हैं। मल्य आठ आने।

सीता चरित—बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए. ने जैन ग्रन्थोंके आधारसे सरल हिन्दीमें बड़ी योग्यतासे सीताजीका चरित लिखा है। मूल्य तीन आने।

मिलनेका पता:—

जैनरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, पो. गिरगांव–बम्बई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org